स्रष्टा का अस्तित्व
सृष्टि के कण-कण
से प्रमाणित !
श्रीराम शर्मा आचार्य

स्त्रष्टा का अस्तित्व सृष्टि के कण-कण से प्रमाणित

लेखक :

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २००९ मूल्य : १८.०० रुपये

प्राण ऊर्जा के आदान-प्रदान का भौतिकीय आधार

सामान्यतया यह माना जाता है कि वैज्ञानिक समुदाय नास्तिक होता है, वह ईश्वर में कदापि विश्वास नहीं करता। किंतु इसके विपरीत एक पाश्चात्य लेखक ने अपने अनुभव व चर्चा-परामर्श के निष्कर्षों के आधार पर धारणा बनाई है कि वैज्ञानिक प्रकारांतर से ईश्वरीय सत्ता में विश्वास रखते हैं। साइंस डाइजेस्ट में प्रकाशित लेख में विद्वान डॉ. कॉर्ल जुस्टांग ने लिखा है कि संसार का हर परमाणु एक निर्धारित नियम व्यवस्थानुसार कार्य करता है। यदि इसमें तनिक भी व्यतिक्रम या अनुशासनहीनता दृष्टिगोचर होने लगे तो यह विराट ब्रह्मांड एक क्षण भी अपने वर्तमान अस्तित्व को नहीं रख पाएगा। यदि ऐसा होता तो एक कण के विस्फोट से अनंत प्रकृति में आग लग जाती और यह संसार अग्नि की लपटों में घिरा एक तप्त पिंड भर होता।

नियामक विधान किसी चेतन व्यष्टि सत्ता का अस्तित्व में होना प्रमाणित करता है। हमारे जीवन का आधार सूर्य है। वह १० करोड़ ६० लाख मील की दूरी से अपनी प्रकाश-किरणें भेजता है जो ८ मिनट में पृथ्वी तक पहुँचती हैं। दिनभर में यहाँ के वातावरण में इतनी सुविधाएँ एकत्र हो जाती हैं कि रात आसानी से कट जाती है। दिन-रात के इस क्रम में एक दिन का भी अंतर पड़ जावे तो जीवन संकट में पड़ जाए। सूर्य के लिए पृथ्वी समुद्र में एक बूँद का-सा नगण्य अस्तित्व रखती है, फिर उसकी तुलना में रूस के साईबेरिया प्रांत में एक गड़रिये के घर में जी रही एक चींटी का क्या अस्तित्व हो सकता है ? पर वह भी मजे में अपने दिन काट लेती है।

वैज्ञानिक भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह धरती अन्य ग्रह-नक्षत्रों की तुलना में अत्यधिक सौभाग्यशाली है। इसकी सूर्य से दूरी तथा कला इतनी उपयुक्त है कि उससे प्राणियों का जन्म, ऋतु अनुकूलता

तथा अगणित शोभा, सुविधा का सृजन संभव हो सका। यह स्थिति अन्य ग्रह-नक्षत्रों की नहीं है। उनका तापमान, शीतमान इतना भयंकर है कि जीवन की संभावना का कोई लक्षण नहीं दीखता।

चूँकि हम इस धरती पर रहते हैं और निकटवर्ती वस्तु की शोभा, उपयोगिता न दीख पड़ती है और न समझ में आती है। उसे देखने-समझने के लिए दूरी का अंतर होना चाहिए। अपोलो ११ अंतरिक्षयान के यात्रियों ने दूर से इस धरती की शोभा को देखा तो वे गद्गद हो उठे। उन्होंने उस सौंदर्य की अभिव्यक्ति को अनिर्वचनीय और अकल्पनीय बताया। अभी-अभी रूसी अंतरिक्षयात्रियों के साथ गए भारतीय अंतरिक्षयात्री राकेश शर्मा ने जब मीलों दूर की ऊँचाई से अपनी पृथ्वी को देखा तो वे प्रसन्नता से अभिपूरित हो अपनी अभिव्यक्ति मात्र इतनी ही कर सके 'बहुत सुंदर दिव्य'।

विज्ञान क्षेत्र के युगऋषि आइंस्टाइन ने ईश्वर के अस्तित्व संबंधी प्रश्नों का उत्तर देते हुए एक भेंटकर्त्ता से कहा था, "मेरी दृष्टि में ईश्वर इस संसार में संव्याप्त एक महान नियम है। मेरी मान्यता के अनुसार ईश्वरीय सत्य अंतिम सत्य है। यों उसका स्पष्ट रूप निर्धारित कर सकना आज की स्थिति में अत्यंत कठिन है। इसकी खोज जारी है। अंतिम सत्य की खोज ही विज्ञान का परमलक्ष्य है। अपने मार्ग पर चलते हुए विज्ञान ने जो तथ्य ढूँढ़े और सत्य स्वीकारे हैं उन्हें देखते हुए भविष्य में और भी बड़े सत्यों का रहस्योद्घाटन होता रहेगा—यह कार्य वैज्ञानिक शोधपद्धति से ही संभव है।"

सिद्धांतों, यंत्रों और आविष्कारों में विज्ञान झाँकता भर दिखाई देता है। उन्हें उसकी उपलब्धियाँ भर कह सकते हैं। वस्तुतः विज्ञान एक जीवांत प्रवृत्ति है जो सत्य के शोध को अपना लक्ष्य मानती है। भले ही इसके फलस्वरूप पूर्व मान्यताओं पर आँच आती हो अथवा किसी वर्ग विशेष का हित-अनहित होता हो। सत्य को सत्य ही रहना चाहिए। विज्ञान की दृष्टि में ईश्वर 'सत्य' है। उसकी साधना को सत्य की खोज

कह सकते हैं। इस प्रकार विज्ञान को अपने ढंग का 'आस्तिक' और उसकी शोध-साधना को 'ईश्वर उपासना' कहा जा सकता है।

ब्रह्मांड पर हुई विज्ञान की खोजों के रूप में इस युगमनीषी के चिंतन को और भी स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। ब्रह्मांडीय व्यवस्था एवं सुनियोजित क्रिया-कलाप एक ऐसी 'ब्राह्मी सत्ता' के अस्तित्व का प्रतिपादन करते हैं, जिन्हें युगऋषि आइंस्टाइन ने परम सत्ता—ईश्वर की उपमा दी थी। वैज्ञानिक तथ्य इसके साक्षी है।

ग्रहों की स्थिति का बारीकी से अध्ययन करने पर अनेकों सृष्टि-नियम ऐसे दृष्टिगोचर होते हैं जो क्या जड़, क्या चेतन सभी पर समान रूप से लागू होते हैं। अपनी पृथ्वी की अगणित विशेषताओं में से एक यह है कि उसकी ऊपरी परत में शीतलता और हलकापन पर्याप्त मात्रा में है। इसी कारण उस पर जीवों की उत्पत्ति से लेकर शोभा-सुषुमा तक का सौंदर्य विकसित हुआ है। जीवन पर भी यह नियम लागू होता है।

पृथ्वी पर रहते हुए भी सहसा हमें इसकी विशालता का आभास नहीं होता, क्योंकि हमारा पैमाना, देखने की-समझने की परिधि सीमित है। मानवी गरिमा इसी में है कि इस भूभाग पर अपने अवतरण एवं अस्तित्व का बोध भी हो तथा कर्त्तव्य ज्ञान भी। भूतल की विराटता की चर्चा करनी हो तो कुछ उदाहरणों से इसे समझना ठीक होगा।

ऐसा माना जाता है कि जापान का टोकियो संसार का सबसे बड़ा शहर है। मैक्सिको सिटी, लंदन, मास्को, न्यूयॉर्क, मुंबई इत्यादि की बारी इसके बाद आती है। तीन लाख एकड़ क्षेत्र में बसे इस भव्य नगर में लगभग ८८ लाख से भी अधिक व्यक्ति रहते हैं। यही स्थिति न्यूनाधिक रूप में उपरोक्त हर शहर की है। प्रतिवर्ष लाखों फ्लैट बनते हैं, नए परिवारों को बसाया जाता है, अनेकों सिनेमाघर, विद्यालय व पुस्तकालय खोले जाते हैं। मास्को के लेनिनग्राड पुस्तकालय में लगभग ढाई करोड़ पुस्तकें संग्रहीत हैं। शहर बढ़ते एवं फूलते जा रहे हैं।

हम जिस विशाल पृथ्वी पर रहते हैं उस पर ऐसे अनेकों विशाल शहर बसे हुए हैं। अकेले भारत में ही १ लाख से अधिक जनसंख्या

वाले दस हजार से अधिक शहर हैं। दुनिया में तो उनकी संख्या लाखों में होगी। १३,००० किलोमीटर व्यास की पृथ्वी के सूखे भाग की जो पूरी पृथ्वी का मात्र उनतीस प्रतिशत है, इस व्यापक हलचल और कल्पना में न उतरने वाली विशालता को भला मनुष्य की एक इंच से भी छोटी आँख कहाँ देख पाती है? जहाँ तक जल साम्राज्य का प्रश्न है, वह विराट है, अनुमानतः इकहत्तर प्रतिशत पृथ्वी के हिस्से में जल ही जल है। इसमें महाद्वीपों द्वारा कई महासागर बँटे हुए हैं।

हिंदमहासागर का क्षेत्रफल २ करोड़ ८० लाख वर्गमील है जबकि भारतवर्ष और पाकिस्तान दोनों का कुल मिलाकर १६,२६,१४८ वर्गमील क्षेत्रफल है। अफ्रीका के दक्षिणी सिरे से लेकर आस्ट्रेलिया के बीच तक इसकी लंबाई ६,२०० मील है। उसमें ३० लाख अरब टन जलराशि, ८० हजार खरब टन नमक और २० किलोवाट प्रतिघंटे की विद्युतशक्ति उसमें भरी हुई है। उसमें रहने वाले जीव-जंतुओं की संख्या तो मनुष्य शरीर में जीन्स की तरह असंख्य है जब कि अभी ऐसे-ऐसे तीन और महासागर हैं। प्रशांत महासागर जिसकी औसत गहराई १४,०५० फुट है ६,३८,००,००० वर्गमील, अटलांटिक महासागर १२,८८० फीट गहरा ३,१८,३०,००० वर्गमील, आर्कटिक महासागर ४,२०० फुट गहरा और ५४,४०,००० वर्गमील में फैला हुआ है। सूखी धरती और वह जल भाग जो उसके अतिरिक्त है वाली धरती की विशालता का अनुभव मनुष्य जैसा छोटा प्राणी कर भी कैसे सकता है? लगभग बीस करोड़ वर्गमील की पृथ्वी का ५ फुट ६ इंच का यह मनुष्य कैसे आकलन, अनुमान कर सकता है। दोनों की कोई तुलना नहीं। यह एक तथ्य है कि अपनी धरती की 'दुनिया' उतनी छोटी नहीं है कि मनुष्यों द्वारा सोची और जानी जाती है। इसी धरती पर असंख्यों जाति के जीवधारी निवास करते हैं। उनकी संख्या भी इतनी बड़ी है कि तुलनात्मक दृष्टि से ५०० करोड़ मनुष्यों का संख्या बल बहुत ही नगण्य एवं उपहासास्पद प्रतीत होगा। संख्या बल के अतिरिक्त उनकी प्रकृति, आवश्यकता, पारस्परिक सहयोग, व्यवस्था, निर्वाह, विनोद, वंशवृद्धि,

प्रसन्नता, आयुष्य आदि की परिस्थितियाँ इतनी विचित्र मिलेंगी जिन्हें देखते हुए उन्हें मनुष्यों की 'दुनिया' से सर्वथा भिन्न एवं विलक्षण स्तर की कहा जा सकता है। आश्चर्य इस बात का है कि अपनी धरती पर असंख्य प्राणियों की, असंख्य स्तर की चित्र-विचित्र दुनिया बसी हुई है।

हमारी पृथ्वी जिसका जन्म ४ अरब करोड़ वर्ष पूर्व हुआ था इसमें जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक सभी अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान हैं। इसका भूमध्य व्यास ७,९२६ मील, व्यास ७९२० मील, क्षेत्रफल १९ करोड़ ७० लाख वर्गमील तथा वजन ५,९८० करोड़ अरब टन है। पृथ्वी पर जीवनयोग्य परिस्थितियाँ जिन अनेक कारणों से बनी हैं, उसमें सूर्य प्रति सेकंड ४० लाख टन शक्ति आकाश में फेंकता रहता है। पृथ्वी को तो उस शक्ति में से कुल चार पोंड शक्ति प्रति सेकंड मिलती है और उतने से ही यहाँ के जलवायु का नियंत्रण, खनिज पदार्थ और मनुष्यों को ताप आदि मिलता रहता है। यह शक्ति देखने में कम जान पड़ती है, किंतु उसे यदि किसी परमाणु केंद्र में पैदा करना पड़े तो उसके प्रति घंटा १,७०० अरब डॉलर व्यय करने पड़ेंगे। सूर्य की वह शक्ति जो वह अपने सौर परिवार की रक्षा और व्यवस्था में व्यय करता है, वह उसकी संपूर्ण शक्ति के दस लाखवें भाग का भी दस लाखवाँ हिस्सा होता है।

सूर्य की प्रचंड क्षमता का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि इसका तापमान ६०० डिगरी सेंटीग्रेड है तो अंदर का अनुमानित ताप १५,००,००,०० डिगरी सेंटीग्रेड। १२ हजार अरब टन कोयला जलाने से जितनी गरमी पैदा हो सकती है उतनी सूर्य एक सेकंड में निकाल देता है। अनुमान है कि सूर्य का प्रत्येक वर्ग इंच क्षेत्र ६० अश्वों की शक्ति (हॉर्स पावर) के बराबर शक्ति उत्सर्जित करता है। उसके संपूर्ण ३३९३०००००००००००० वर्ग मील क्षेत्र में शक्ति का अनुमान करना हो तो इस गुणनखंड को हल करना चाहिए—३३९०००००००००००० × १७६० × ३ × १२ इतने हॉर्स पावर की शक्ति न होती तो यह इतनी

विशाल पृथ्वी और विराट सौर जगत आँखों के सम्मुख प्रस्तुत है वह अंधकार के गर्त में बिना किसी अस्तित्व के डूबा पड़ा होता।

पृथ्वी के जीवनदाता सूर्य की शक्ति अत्यंत प्रचंड है। ४ मील घनत्व वाले ९ करोड़ ३० लाख मील लंबे बरफ के कृत्रिम खंडों को यह क्षणभर में पिघला सकता है।

सूर्य के १ इंच में जिस ऊर्जा व प्रकाश की कल्पना की गई है, वह ५ लाख मोमबत्तियों के एक साथ जलाने की शक्ति के बराबर होता है। यह सारी शक्ति एक साथ पृथ्वी पर फेंक दी जाती तो यहाँ की मिट्‌टी भी जलने लगती। जलने ही नहीं लगती, यह भी एक प्रकार का सूर्य पिंड हो जाती जबकि सामान्य स्थिति में पृथ्वी को सूर्य-शक्ति का लगभग २२० करोड़वाँ हिस्सा ही मिलता है। ४ अरब आबादी मनुष्यों की, १०० अरब आबादी पक्षियों की, १,००० अरब आबादी अन्य जीव-जंतुओं की और पृथ्वी पर पाए जाने वाले विशाल वनस्पति जगत तथा ऋतु-संचालन का सारा कार्य उस २२० करोड़वें हिस्से जितनी शक्ति से संपन्न हो रहा है। पूरी शक्ति जो सौरमंडल के करोड़ों ग्रहों-उपग्रहों, क्षुद्रग्रहों का नियमन करती है, प्रकाश और गरमी देती है। अपने १९ करोड़ ९८ लाख टन महाशंख भार को २०० मील प्रति सेकंड की भयानक गति से २५ करोड़ वर्ष में पूरी होने वाली विराट आकाश की परिक्रमा भी वह अपनी इसी शक्ति से पूरी करता है। उस संपूर्ण शक्ति और सक्रियता को कूता जाना संभव नहीं है, उसे भावनाओं में केवल मात्र उतारा जाना संभव है।

प्रतिदिन सूर्य की रोशनी द्वारा डेढ़ वर्गमील क्षेत्र के भूभाग पर लगभग उतनी ही ऊर्जा उत्पन्न होती है जितनी कि सन् १९४५ में हिरोशिमा पर डाले गए परमाणु बम द्वारा उत्पन्न हुई थी। दोनों प्रकार की ऊर्जाओं में फरक मात्र इतना है कि सूर्य रोशनी के द्वारा बहुत बड़े क्षेत्र में तथा लगभग बारह घंटे की लंबी अवधि में उतनी ही ऊर्जा उत्पन्न होती है जितनी परमाणु बम के द्वारा बहुत छोटे क्षेत्र में तथा एक सेकंड से भी कम समय में उत्पन्न हो पाई। यही कारण है कि परमाणु

बम द्वारा लोगों को मृत्यु का ग्रास बना देने वाली प्रघाती तरंगें उत्पन्न होती हैं जबकि सूर्य प्रकाश द्वारा उत्पन्न ताप बहुत हलका व सुखद होता है तथा इसके द्वारा उत्पन्न ऊर्जा इतनी विसरित (विरल) होती है कि पौधे बिना किसी हानि के उसे स्वयं में अवशोषित कर लेते हैं।

सूरज से आने वाली ऊर्जा कितनी ही कम क्यों न हो जीवन के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण है। पृथ्वी के जीवधारियों के लिए वर्ष ३६५,१/४ दिन का होता है पर सूर्य के लिए वह अपनी एक हजार किरणों के घूमने भर का समय। सूर्य का प्रकाश हर क्षण पृथ्वी के आधे भाग पर पड़ता है अर्थात सूर्य का एक सेकंड पृथ्वी के निवासी के लिए १२ घंटे। कीट-पतंगों के लिए तो उसे कल्प ही कहना चाहिए। सूर्य अरबों वर्ष से जी रहा है और करोड़ों वर्ष तक जिएगा पर इतनी अवधि में तो मनुष्यों की लाखों पीढ़ियाँ मर-खप चुकी होंगी। यदि सृष्टि के प्रारंभ से लेकर अब तक जितने लोग जन्म ले चुके उन सबके नाम लिखना संभव हो तो उसके लिए पृथ्वी के भार से कम कागज की आवश्यकता न पड़ेगी। सूर्य का एक जन्म इतना बड़ा है कि मनुष्य उसकी तुलना में अरबवें हिस्से की भी जिंदगी नहीं ले पाया।

सूर्य और पृथ्वी की तुलना नहीं हो सकती। किंतु अपने स्थान पर पृथ्वी और उस पर रहने वाले प्राणियों की सामर्थ्य को देखकर भी दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है और सोचना पड़ता है कि विश्व की प्रत्येक इकाई अपने आप में एक परिपूर्ण सूर्य है।

सूर्य के अतिरिक्त पृथ्वी के लिए अन्यान्य दाता भी ऐसे हैं जो अनुदान बरसाते रहते हैं।

शिकागो विश्वविद्यालय के एनरिको इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूक्लियर स्टडीज के शोध प्राध्यापक जॉन एच. वॉर्कर ने अपना निष्कर्ष व्यक्त करते हुए कहा है, "अन्य ग्रह-नक्षत्रों द्वारा हमारी पृथ्वी पर लगभग एक टन अंतरिक्ष धूलि बरसाई जाती है, जिसमें बहुमूल्य खनिज, रसायन ही नहीं ऐसे जीवाणु भी होते हैं जिन्हें धरती पर उत्पन्न हुए नहीं कहा जा सकता।" वॉर्कर महोदय का कथन यह भी है कि स्वभावतः अपनी धरती भी अन्य ग्रहपिंडों तक अपनी धूलि बिखेरती

होगी और इस धुलैंडी में धूल बिखेरने के पारस्परिक हुड़दंग में वह पीछे नहीं रहती होगी। पृथ्वी को मिलने वाले अनुदानों में से कुछ तो प्रत्यक्ष हैं और कुछ अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष उपहार उल्काओं के रूप में प्राप्त होते रहते हैं। धरती पर उल्काएँ निरंतर बरसती रहती हैं। उनमें कुछ तो वायुमंडल में प्रवेश करते समय ही जल-भुन जाती हैं, कुछ बचे या भुने रूप में धरातल पर बरसती रहती हैं। उनसे न केवल पृथ्वी के भार में अभिवृद्धि होती है वरन और भी बहुत कुछ मिलता रहता है।

मंगल और वृहस्पति के बीच उल्का पिंडों की शृंखला परिभ्रमण करती है। इसे एस्टेरॉइड मंडल कहते हैं। उसमें कुछ बहुत छोटे आम, अमरूद जैसे और कुछ एक हजार किलोमीटर व्यास तक के उल्का खंड हैं। इनमें से कुछ कभी-कभी पथभ्रष्ट होकर पृथ्वी की ओर चल पड़ते हैं। फलतः उसके वायुमंडल में प्रवेश करते समय उन्हें भयंकर घर्षण का सामना करना पड़ता है। इसमें वे बुरी तरह जल-भुन जाते हैं। उनके अधजले खंड कभी-कभी पृथ्वी पर भी गिरते हैं। इन्हीं को उल्कापात या टूटते हुए तारे के रूप में देखा-समझा जाता है। गणितीय आधार पर जाना गया है कि प्रायः एक हजार टन उल्का धूलि धरती पर गिरती है। उसके वजन में यह वृद्धि हर वर्ष होती चली जाती है।

भूतकाल में उल्कापात जितना होता था, अब उतना नहीं होता। इसका कारण पृथ्वी का वायुमंडल क्रमशः अधिक सघन होते चले जाना है। चंद्रमा पर वायुमंडल के अभाव में भयंकर उल्कापात होता रहा है। उसके धरातल में पाए जाने वाले गड्ढे इसी कारण बने हैं। पृथ्वी पर अनेक सरोवर इसी कारण बने हैं। खड्डों में उल्कापात होने से पृथ्वी की गहरी सतह भी प्रभावित हो रही है और उस कारण भूकंपों और ज्वालामुखियों का नया आधार खड़ा होता रहा है।

उल्काओं ने जहाँ धरती को लातें मारकर, चिकोटी काट-काट कर उत्तेजित किया और परिवर्तन प्रक्रिया को तेजी से आगे बढ़ाया है, उस दृष्टि से उन्हें श्रेय भी दिया जा सकता है। यों अपने समतल गोलक को चेचक जैसा दाग-दगीला और कुरूप भी उन्हीं ने बनाया है।

अणुओं के परिवर्तन और सम्मिश्रीकरण में भी इस प्रहार-प्रक्रिया से बहुत सहायता मिली है। सामान्य निर्जीव अणुओं का सूक्ष्मजीवी स्तर तक विकसित होना एवं फफूँदी शैवाल से बढ़ते-बढ़ते वनस्पति स्तर तक पहुँचने में भी परिवर्तन गति को बढ़ाने में उल्काओं की अच्छी-खासी भूमिका रही है।

जीन्स के ढाँचे को सुनिश्चित रूप देने वाले फ्रांसिस क्रिक का कथन यह भी है कि धरती का जीवन उल्कापातों के माध्यम से धरती पर उतरा है।

स्वीडन के दार्शनिक संत आहेर्नियस ने भूतकाल की तरह इन दिनों भी आकाश से धरती पर जीवन की अनेक धाराओं के उतरने की बात कही थी। उनका आधार दर्शन था इसलिए उन पर ध्यान नहीं दिया गया, पर अब उनके मत को वैज्ञानिक प्रश्रय मिल रहा है और यह विश्वास बढ़ता जा रहा है कि अंतरिक्ष और धरातल के बीच न केवल पदार्थों और ऊर्जाओं का आदान-प्रदान होता है वरन जीवन की विशिष्ट धाराएँ उतरने का भी अनुभव होता है।

चिरनवीन अंतरिक्षीय शोधों में वाशिंगटन की नौसेना अनुसंधान प्रयोगशाला ने आकाशीय पिंडों में सबसे रहस्यमय तारे 'क्वासार' बताए हैं। वे बहुत बूढ़े और बहुत दूर होते हुए भी बहुत चमकीले हैं और सबसे खतरनाक एक्स-किरणें प्रचंड मात्रा में समस्त ब्रह्मांड में बिखेरते हैं। वही अनुदान पृथ्वी को भी विपुल मात्रा में मिलता है। रॉकिट विज्ञानी डॉ. हर्बर्ट फ्रीडमेन का कथन है कि इन क्वासार्स ने समस्त ब्रह्मांड को एक्स-किरणों का एक प्रकार से महासागर ही बनाया हुआ है। क्वासार्स में से एक निकटवर्ती ३ सी १४० को ६०० करोड़ प्रकाश वर्ष दूर माना गया है। एक प्रकाश वर्ष अर्थात १०००००० करोड़ किलोमीटर की दूरी। किलोमीटरों के हिसाब से इन क्वासार्स की दूरी कितनी अकल्पनीय है?

क्वासार्स और क्वाष्टा-समुच्चय के रूप में पृथ्वी और अन्यान्य ग्रहों के बीच विद्यमान कणों अथवा तरंगों की कल्पना वैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न रूपों में की है।

'ईथर' की कल्पना का अनस्तित्व पिछले दिनों मोर्स तथा माइकेलसन ने सिद्ध कर दिया है। शब्द-तरंगों के वहन करने वाले ईथर की खोज पर फिट्ज गेराल्ड और लारेंटज को बहुत ख्याति मिली थी। पर अब उसके नकारात्मक प्रबल प्रतिपादन ने विज्ञान की अन्य मान्यताओं के भी खोखली होने की आशंका उत्पन्न कर दी है। आइंस्टाइन का सापेक्षवाद अब उतना उत्साहवर्द्धक नहीं रहा, उसमें बहुत सी शंकाओं और त्रुटियों की संभावना समझी जा रही है। गैलीलियो, न्यूटन आदि की मान्यताएँ अब पुरातन पंथी वर्ग की कल्पनाएँ ठहराई जा रही हैं।

महर्षि कणाद ने अपने वैशेषिक दर्शन में अपने ढंग से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि यह संसार छोटे-छोटे कणों से मिलकर बना है। ईसा से ४०० वर्ष पूर्व यूनानी दार्शनिक देमोक्रितु भी अणुवाद का प्रतिपादन करते थे। इससे पूर्व यह जगत पंचतत्त्वों का बना माना जाता था। अब पंचतत्त्व का बहुत मोटा वर्गीकरण है। पानी अपने आप में मूल सत्ता नहीं रहा, उसे कुछ गैसों का सम्मिश्रण मात्र स्वीकार किया गया है। पुरानी मान्यताएँ अपने समय में बहुत सम्मानित थीं, पर वे अब त्रुटिपूर्ण ठहरा दी गई हैं।

अब वैज्ञानिकगण भौतिकी के सिद्धांतों के आधार पर यह प्रतिपादन देते हैं कि क्वासार्स से उद्भूत होकर आने वाले न्यूट्रॉन कण ही ऊर्जा के परस्पर आदान-प्रदान की पृष्ठभूमि बनाते हैं। न्यूट्रॉन की खोज होने पर ही परमाणु-ऊर्जा और परमाणु-बम दोनों बने। 'न्यूट्रॉन-भौतिकी' नामक नई विज्ञान शाखा चल पड़ी थी। बाद में वैज्ञानिक अन्वेषणों से ज्ञात हुआ कि परमाणु के सूक्ष्म विश्व में प्रत्येक कण का एक प्रतिकण विद्यमान है। ऐसे ऋणावेशी कण इलेक्ट्रॉन हैं तो उसका विरोधी, धनावेशी कण है—पोजीट्रॉन। उसी तरह प्रत्येक कण का एक प्रतिकण है।

कण और प्रतिकण जब परस्पर पास आते हैं तो विस्फोट होता है और ऊर्जा का उत्सर्जन होता है।

इस ऊर्जा की इकाई है—इलेक्ट्रॉन वोल्ट। किसी वस्तु को पेंसिल की नोंक से हलके-हलके टक-टक करने से उस वस्तु के परमाणु को एक इलेक्ट्रॉनिक वोल्ट ऊर्जा मिल जाएगी। पर इस ऊर्जा से परमाणु में कोई गति या चंचलता नहीं आ सकेगी। १ हजार से १० हजार तक इलेक्ट्रॉन-वोल्ट ऊर्जा पाकर परमाणु के इलेक्ट्रॉन चंचल हो उठते हैं। इसी से रासायनिक द्रव्यों का संयोजन होता है। नियामक सत्ता व पृथ्वी पर निवास करने वाले जीवधारियों के मध्यवर्ती सूत्र का कार्य करने वाली चेतनसत्ता का भौतिकीय आधार इस इलेक्ट्रॉन वोल्ट रूपी ऊर्जा की इकाई को माना जा सकता है। चेतना की भाषा में तो इस अतिसूक्ष्म ऊर्जा को न देखा जा सकता है और न ही मापा जा सकता। फिर भी यह तथ्य अपने स्थान पर सही है कि पृथ्वी व उसका अधिष्ठाता सूर्य अपने तारामंडल सहित परस्पर अन्योन्याश्रित संबंधों के आधार पर ही उस सृष्टि का क्रिया-कलाप चला रहे हैं।

❐

जड़-चेतन सबमें समाई एक ही शक्ति

मनुष्य ने जब से सोचना, समझना आरंभ किया तभी से उसने अपने आस-पास की चीजों को कुतूहल की दृष्टि से देखना और उनका रहस्य उघाड़ने का प्रयास शुरू किया। कुतूहल और रहस्य जानने की उत्कट लालसा तथा प्रयत्नों से ही ज्ञान-विज्ञान का इतना विपुल और विस्तृत विकास संभव हुआ। कभी लगता है कि मनुष्य ने अमुक रहस्य या गुत्थी सुलझा ली, लेकिन दूसरे ही क्षण पता चलता है कि सचाई कुछ और है तथा रहस्य अभी ज्यों का त्यों बना हुआ है। यही नहीं उसने रहस्य को जानने के लिए जो प्रयास किए, उन प्रयासों से जो तथ्य सामने आए उनमें और भी कई रहस्यपूर्ण गुत्थियाँ सामने आ गईं। कुल मिलाकर यह कि दो हजार साल के ज्ञात-अज्ञात वैज्ञानिक अनुसंधानों, उनकी ऐतिहासिक उपलब्धियों और प्राप्त ज्ञान-भंडार के उपरांत भी, मनुष्य किसी क्षेत्र में यह दावा नहीं कर सकता कि उस क्षेत्र में उसने पूरी जानकारी प्राप्त कर ली है।

ज्ञान के विकास और रहस्यों को सुलझाने के इस दौर में कई बार ऐसा लगा कि अब सब कुछ जान लिया गया है और कुछ भी जानने को बाकी नहीं बचा है। उदाहरण के लिए डॉर्विन ने जब विकासवाद के सिद्धांतों को खोज निकाला और उसकी पुष्टि में अनेकों प्रमाण खोज लिए गए तो समझा जाने लगा कि पृथ्वी पर जीवन का विकास कैसे संभव हुआ, यह पूरी तरह जान लिया गया है। लेकिन आगे चलकर यह पता चला कि यह खोज तो बहुत ही आधी-अधूरी है। इसके न केवल अपवाद मिले वरन ऐसे तथ्य भी मिले जिनसे विकासवाद के सिद्धांत ही संशयास्पद बन गए। जॉन डारविन ने परमाणु सिद्धांत की व्याख्या की तो लगने लगा, पदार्थ की छोटी से छोटी इकाई के संबंध में जान लिया गया। लेकिन जल्दी ही यह धारणा नितांत भ्रम सिद्ध हो गई और परमाणु के संबंध में नए-नए तथ्य प्रकाश में आए। डॉल्टन का

परमाणु सिद्धांत धराशाई हो गया और जहाँ यह मान लिया गया था कि परमाणु के संबंध में अब कुछ भी जानने को बाकी नहीं बचा है, वहीं अब यह माना जा रहा है कि परमाणु के संबंध में एक प्रतिशत भी पूरी जानकारी प्राप्त नहीं हुई है।

पिछले बीस-तीस वर्षों में इतनी अधिक वैज्ञानिक जानकारियाँ एकत्रित की गई हैं, जितनी अब तक कभी भी नहीं हुईं। इन अनुसंधानों और जानकारियों के आधार पर गत दो-तीन दशकों को वैज्ञानिक प्रगति का युग कहा जा सकता है। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि इन दो-तीन दशकों में विज्ञान अपने आप को जितना अपूर्ण और अधूरा अनुभव करने लगा है, उतना पहले कभी नहीं था। वैज्ञानिकों की वर्तमान पीढ़ी निस्संकोच भाव से यह कह रही है कि हमने अब तक जितने रहस्य सुलझाए हैं, रहस्यों को सुलझाने की इस प्रक्रिया में, उससे कहीं अधिक रहस्य पैदा हो गए हैं और कह नहीं सकते कि प्रकृति के रहस्य कभी सुलझ भी सकेंगे अथवा नहीं। रहस्यों के उलझते जाने की इस प्रक्रिया का मूल कारण चेतना के नियमों से अनभिज्ञता है, या यों कह सकते हैं कि चेतना के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि वह कब, किस तरह का व्यवहार करेगी ? इसलिए किसी व्यक्ति या चेतन प्राणी के संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

भीड़ या व्यक्तियों और वस्तुओं के समुदाय के बारे में तो फिर भी अनुमान लगाए जा सकते हैं और वे अनुमान करीब-करीब सही होते हैं, लेकिन व्यक्ति विशेष अथवा वस्तु विशेष के संबंध में अनुमान लगाना तो दूर रहा कल्पना तक नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए मुंबई, कोलकाता, दिल्ली, चेन्नई जैसे शहरों में प्रतिदिन दस-पाँच दुर्घटनाएँ होती हैं। २०-२५ व्यक्ति इन दुर्घटनाओं में मर भी जाते हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि एक वर्ष में तीन-चार हजार दुर्घटनाएँ होंगी और पाँच-सात हजार व्यक्ति मरेंगे। इस तरह के आँकड़े इकट्ठे किए भी जाते हैं, उनकी घोषणा भी की जाती है कि इस वर्ष इतनी दुर्घटनाएँ घटने की संभावना है। ये आँकड़े करीब-करीब सही

होते हैं। लेकिन व्यक्ति विशेष या वाहन विशेष के संबंध में विचार किया जाए कि वह किसी दुर्घटना का शिकार होगा अथवा नहीं तो इस संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि इन दुर्घटनाओं में से कौन सी दुर्घटना किस व्यक्ति के साथ या किस वाहन की घटेगी?

विज्ञान जब तक अपना शोध अनुसंधान पदार्थ को जड़ मानकर करता रहा, तब तक वह दावे के साथ कहता रहा कि सचाई यह है। लेकिन पदार्थ का विश्लेषण करते-करते वैज्ञानिक अब वहाँ तक पहुँच गए हैं कि पदार्थ का अस्तित्व ही समाप्त हो गया है। अब पदार्थ बचा ही नहीं है। पदार्थ की परिभाषा यही की जाती है कि वह जड़ होता है, उसका आकार व वजन होता है, निश्चित स्वरूप होता है। लेकिन पदार्थ का सूक्ष्मतम विश्लेषण करने के बाद यह परिभाषा ध्वस्त हो गई है। उदाहरण के लिए पदार्थ के संबंध में निश्चित धारणा थी कि अमुक परिस्थितियों का पदार्थ पर अमुक तरह का प्रभाव पड़ेगा और उस पर अमुक तरह की प्रतिक्रिया होगी। लेकिन अब इस संबंध में नए तथ्य सामने आए हैं और कहा जा रहा है कि सब कुछ अनिश्चित है।

पिछले दिनों कण भौतिकी (पार्टिकल फिजिक्स) के क्षेत्र में हाइसन वर्ग के अनिश्चित सिद्धांत की बड़ी चर्चा हुई। उनके अनुसार एक ही समय में, एक साथ, एक तरह के कण किस तरह का व्यवहार करेंगे, यह नहीं जाना जा सकता। कण विशेष की गति और परिस्थिति के संबंध में भी कुछ कह पाना संभव नहीं है। केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है और अनुमान कोई सही निकले यह कोई जरूरी नहीं है। अनेक प्रयोग किए गए कि किन परिस्थितियों में कौन से कण किस तरह का व्यवहार करते हैं? एक ही परिस्थिति में, एक ही प्रक्रिया से, एक ही तरह के कणों का हजारों बार अध्ययन किया गया। लेकिन यह जानकर हैरानी हुई कि प्रत्येक बार हर कण का व्यवहार अनुमान से भिन्न था। यही नहीं पिछली प्रतिक्रिया भी नहीं दोहराई गई। इस आधार पर घोषणा की गई कि पदार्थ की जैसी परिभाषा की जाती रही है वैसा कोई पदार्थ इस जगत में है ही नहीं। दूसरे शब्दों में

यह घोषणा की गई कि पदार्थ मर गया है। पहले कभी नास्तिकतावादी विचारक नीत्से ने यह घोषणा की थी कि 'ईश्वर मर गया है,' लेकिन अब विज्ञान को यह घोषणा करनी पड़ रही है कि 'पदार्थ मर गया है'। अब वैज्ञानिकों को यह कहना पड़ रहा है कि पदार्थ विज्ञान से बाहर भी एक अत्यंत विशाल, दुरूह और अज्ञात क्षेत्र रह जाता है, जिसे खोजने के अभी तक कोई उपाय नहीं ढूँढ़े जा सके हैं। लेकिन वह क्षेत्र विज्ञान की सभी ज्ञात धाराओं का मूल स्रोत और नियंत्रणकर्त्ता है।

वैज्ञानिक मैकब्राइट का कथन है, "विश्व के परोक्ष में किसी ऐसी सत्ता के होने की पूरी और निश्चित संभावना है जो ज्ञानयुक्त और इच्छायुक्त हो। उसी के कारण विश्व की गतिविधियाँ अनियंत्रित और अनिश्चित रूप से चल रही हैं।" डॉ. मोर्डेल का कहना है, "अणु और पदार्थ के सूक्ष्मतम कणों के इस विचित्र व्यवहार से यही सिद्ध होता है कि कोई चेतनशक्ति है अवश्य, जिसके प्रभाव से ही अणु अथवा कणों का स्वभाव पकड़ में नहीं आता।"

वह कौन सी शक्ति है और किस प्रकार काम करती है ? उसके क्या नियम हैं ? कैसे वह पदार्थ को प्रभावित करती है ? आदि प्रश्नों का उत्तर विज्ञान के पास अभी नहीं है। इस संदर्भ में विख्यात वैज्ञानिक इंगोल्ड का कथन है, "जो चेतना इस सृष्टि में काम कर रही है उसका वास्तविक स्वरूप समझने में अभी हम असमर्थ हैं। इस संबंध में हमारी वर्तमान मान्यताएँ अधूरी, अप्रामाणित और असंतोषजनक हैं।"

जिस प्रकार सूर्य ओस की असंख्य बूँदों में असंख्य प्रतीत होता है, उसी प्रकार देश-काल की परिधि में आकर उससे परे रहते हुए भी वह शक्ति असंख्य नाम रूपों में प्रतिभासित होती है। स्वरूप में भिन्नता होते हुए भी कारणभूत सत्ता की दृष्टि से समस्त जड़-चेतन में वही विद्यमान है। सृष्टि की समस्त रचनाएँ उसकी ही क्रमिक अभिव्यक्तियाँ हैं। इस तथ्य के अनुसार सारा संसार एक शक्ति के सूत्र में माला के मनके के समान गुँथा हुआ है। गुँथने वाली इस शक्ति को ही लौकिक परिभाषा के अनुसार 'मन' कहा गया है। वस्तु संसार का स्वरूप मन के संकल्प के अनुसार ही बनता है। सबमें विद्यमान इस

सूक्ष्मशक्ति द्वारा ही स्रष्टा समस्त प्रकृति पर नियंत्रण रखता एवं संचालन करता है।

ब्रह्मांड की वास्तविक शक्ति सूक्ष्म में ही निहित है। ऊर्जा, प्रकाश, चुंबकत्व, गुरुत्वाकर्षण, विद्युत उसी के विविध रूप हैं। इन सबके समष्टिगत स्वरूप को ही ब्रह्म कहा गया है। आधुनिक विकासवाद की अवधारणा भी इस सिद्धांत पर ही अवलंबित है। जीवद्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) से जीव की विकास प्रक्रिया में एक शक्ति के अनेक में रूपांतरित होने का ही तथ्य छिपा है। सापेक्षवाद के प्रवर्तक भौतिक शास्त्र के मूर्द्धन्य वैज्ञानिक आइंस्टीन के अनुसार सर्वत्र ऊर्जा संव्याप्त है। समस्त पदार्थ ऊर्जा के ही स्थूल रूप हैं। ठोस, द्रव्य, गैस की विभिन्न अवस्थाएँ ऊर्जा की क्रमशः स्थूल से सूक्ष्मतर स्थितियाँ हैं, ये अवस्थाएँ परिवर्तनशील हैं। स्थूल से सूक्ष्म एवं सूक्ष्म से स्थूल में बदलती रहती हैं। इसे जीवनचक्र नाम ऊर्जा के रूपांतरण प्रक्रिया के कारण ही दिया गया है। ठोस रूप में दिखाई पड़ने वाला पदार्थ भी अत्यधिक विकिरण के प्रभाव से सूक्ष्म से सूक्ष्मतर अवस्था में परिवर्तित हो जाता है। यह प्रकाश की गति प्राप्त कर ले तो पूर्णतया ऊर्जा में परिवर्तित हो जाएगा। इसका स्थूल स्वरूप अदृश्य हो जाएगा।

एक ही शक्ति, किस प्रकार विभिन्न रूपों में रूपांतरित होती रहती है, इसे भौतिक विज्ञान के अनुसार समझा जा सकता है। किसी भी द्रव्य की तीन भौतिक अवस्थाएँ हैं—ठोस, द्रव्य एवं गैस। समयानुसार यह अवस्थाएँ परस्पर परिवर्तित होती रहती हैं। ठोस के रूप में दिखाई पड़ने वाला बरफ ताप के संपर्क में आते ही द्रव में बदल जाता है। तापक्रम बढ़ा देने से वाष्पित होकर गैस अवस्था प्राप्त कर लेता है। इसकी उलटी प्रक्रिया भी चलती है। भाप शीत के संपर्क में आने पर अथवा कम ताप होने पर द्रव एवं तापमान न्यून हो जाने पर जमकर बरफ बन जाती है। यह प्रक्रिया समस्त प्रकृति में चलती है। पानी का वाष्पित होकर बादलों में परिवर्तित होना तथा सघन होकर पानी के रूप में बरसना प्रकृति की एक अनिवार्य प्रक्रिया है। यही पानी नदी, नालों के माध्यम से जीव-जंतुओं एवं वनस्पतियों के शरीर में पहुँचता है।

शरीर के तत्त्वों से मिलकर रक्त, जीवनीशक्ति, स्थूल अंशों से संयुक्त होकर मांस, मज्जा एवं हड्डियों का निर्माण करता है। वनस्पतियों में घुल-मिलकर वह उसका ही अंश बन जाता है। जीवों के मरने पर उसके स्थूल अवयव जल आदि सड़-गल कर पुनः सूक्ष्मावस्था में पहुँच जाते हैं। व्यक्त से अव्यक्त और अव्यक्त से व्यक्त अवस्था में ऊर्जा की रूपांतरण प्रक्रिया में ही समस्त सृष्टि का व्यापार चल रहा है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया पदार्थ के असंख्य परमाणुओं के परस्पर संयोग एवं वियोग के कारण ही हो पाती है। इन परमाणुओं की गतिशीलता के कारण ही स्वरूप में परिवर्तन होता है।

अनेकों रासायनिक जटिल प्रक्रियाओं से गुजरते हुए यह शक्ति वनस्पतियों एवं जीव-जंतुओं के स्थूल कलेवर के रूप में प्रस्फुटित होती है। यंत्रों कल-कारखानों की दानवी शक्ति भी उस महाशक्ति का ही भौतिक रूप है। विशिष्ट प्रक्रियाओं में आकर एक शक्ति अनेक गुणों वाली शक्तियों में रूपांतरित हो जाती है। प्रकाश, ताप, विद्युत, चुंबकत्व, गुरुत्वाकर्षण, घर्षण, दबाव उसके ही विविध रूप हैं। नवीन वैज्ञानिक शोधों द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि गुरुत्वाकर्षण को छोड़कर सभी भौतिक शक्तियाँ मूल रूप से चुंबकीय हैं। यह चुंबकीय स्वरूप भी पदार्थ के परमाणुओं की गतिशीलता के कारण ही उत्पन्न होता है।

आइंस्टीन के सापेक्षवाद सिद्धांत के अनुसार विविध सापेक्ष आधारों के कारण ही संसार का विभिन्न स्वरूप दिखाई पड़ता है। जड़-चेतन के बीच भेद भी सापेक्ष आधारों की विषमता के कारण है। यदि संपूर्ण प्रकृति एवं सभी जड़-चेतन को देखने का कोई एक निरपेक्ष आधार करतलगत हो जाए तो संसार के वास्तविक स्वरूप का पता लग सकता है। सर्वत्र एक सत्ता, एक शक्ति का बोध तो निरपेक्ष सत्ता के अवलंबन से ही संभव है। विविधता तो आधारों की भिन्नता के कारण दृष्टिगोचर होती है। संसार को समझने एवं सर्वत्र व्याप्त एक महाशक्ति की अनुभूति करने के लिए उस अपरिवर्तनीय नित्य, चेतना का ही अवलंबन लेना होगा।

विज्ञान के बढ़ते हुए चरण अब उस केंद्रबिंदु पर पहुँच रहे हैं, जहाँ से ऋषियों ने उद्घोष किया था—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

—*ईशावास्योपनिषद्*

इस समस्त जगत में जो कुछ भी जड़ और चेतन दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वे सभी ईश्वर में ही व्याप्त हैं।

परमाणु के विविध कणों से विनिर्मित होने के सिद्धांत से आगे बढ़कर विद्युत तरंगों के रूप में प्रतिपादित होने से पदार्थों की भिन्नता का सिद्धांत भी खंडित हो रहा है। नवीनतम शोधों के अनुसार विद्युत तरंगों की विविध गति के कारण ही एक पदार्थ के परमाणु से दूसरे पदार्थ के परमाणु में अंतर होता है, यह अंतर ही पदार्थों की भिन्नता के रूप में दिखाई पड़ता है।

भौतिक शास्त्र के प्रख्यात विद्वान सर जेम्स जीन्स का कहना है कि विद्युत तरंगों का सिद्धांत प्रकृति की एकरूपता एवं उसकी असंख्य संरचनाओं में व्याप्त एक महाशक्ति का बोध कराता है। जेम्स जीन्स का यह प्रतिपादन भारतीय दर्शन की एक शक्ति की अवधारणा का ही समर्थन करता है।

इन विद्वानों के अतिरिक्त रहस्यपूर्ण वैज्ञानिक गुत्थियों का समाधान करते हुए अनेक मनीषियों ने ग्रंथ लिखे हैं। प्रख्यात वैज्ञानिक एफ. एल. बोश्के ने एक पुस्तक लिखी है—'द अनएक्सप्लेंड'। इस पुस्तक में बोश्के ने जो प्रतिपादन दिए हैं, उनसे यही निष्कर्ष निकलता है कि एक सच्चा वैज्ञानिक सब कुछ जान लेने का दावा कभी नहीं करता। बल्कि जैसे-जैसे वह अपनी शोध-साधना के क्षेत्र में गहरा उतरता जाता है उसे एक से एक रहस्यमय गुत्थियों का पता लगता है और अनुभव होता है कि प्रत्यक्षत: जगत जैसा प्रतीत होता है, वैसा तो वास्तव में कुछ भी नहीं है। बल्कि सब कुछ रहस्यपूर्ण है। यह बात और है कि भीड़ की संभावनाओं के समान पदार्थ के स्थूल नियमों का पता लगाकर विज्ञान उससे यत्किचित लाभ उठाने की स्थिति में पहुँच गया है। परंतु सचाई कुछ और ही है। इन स्थूल नियमों से लाभ उठाने के कारण यह

भ्रम हो सकता है कि विज्ञान ने शायद सत्य को जान लिया हो पर वैसा है नहीं। मोटी बातें जो दिखाई देती हैं उनका थोड़ा सा परिचय भी पर्याप्त लाभ दे सकता है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि उनकी वास्तविकता जान ली गई। सूर्य रोज उगता है, प्रकाश देता है, उस प्रकाश से ऊर्जा के रूप में लाभ उठाया जा सकता है—यह जान लेना ही पर्याप्त है। इसमें यह जानने से कोई अंतर नहीं पड़ता कि सूर्य पृथ्वी का चक्कर लगा रहा है अथवा पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा कर रही है।

प्रकृति की स्थूल गतिविधियों का अनुकरण करते हुए ही अब तक दिखाई पड़ने वाली मशीनी सुविधाएँ जुटाई जा सकी हैं। लेकिन विज्ञान के विभिन्न सैद्धांतिक पहलुओं पर अभी भी मतभेद हैं। 'द अनएक्सप्लैंड' के लेखक एफ. एल. बोश्के ने यह भी लिखा है कि विज्ञान के क्षेत्र में परस्पर विरोधी सिद्धांतों का द्वंद्व अनवरत चलता रहता है और सचाई क्या है, यह अभी भी अज्ञात है। उनके अनुसार, चाहे दूरबीन से देखी जा रही आकाशगंगा हो अथवा माइक्रोस्कोप से देखे जाने वाले, अन्वेषित किए जाने वाले जीवाणु-परमाणु; वैज्ञानिक किसी भी क्षेत्र में एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके हैं और न पहुँच सकेंगे।

विज्ञान अपने शैशव से क्रमशः विकसित होता हुआ किशोरावस्था में प्रवेश कर रहा है। उसके अनुभव, निष्कर्ष और ज्ञान नित्य-निरंतर विकसित परिमार्जित होते जा रहे हैं। अभी उसे प्रौढ़, वृद्ध एवं परिपक्व होने में बहुत समय लगेगा। फिलहाल तो उसे अपनी पिछली गलतियाँ सुधारने से ही फुरसत नहीं है। अभी तक जिस बात का जोर-शोर से प्रतिपादन किया जाता है, अब उन्हीं के संबंध में मान्यताएँ बदलने की घोषणा करनी पड़ती है। जैसे-जैसे नए तथ्य सामने आते जाएँगे, नए निष्कर्ष और नए सत्यों तक विज्ञान पहुँचता जाएगा वैसे-वैसे वर्तमान कई नई मान्यताएँ बदलेंगी और उन तथ्यों का समर्थन होता जाएगा, जिन्हें भारतीय ऋषि-मुनियों ने पहले ही जान लिया था। भारतीय मनीषियों ने हजारों वर्ष पूर्व चेतन की सर्वव्यापकता, ब्रह्म की सत्यता

को उद्‌घोषित किया था। **सर्वं खल्विदं ब्रह्म, आत्मै वेद सर्वं, एको ब्रह्म द्वितीयोनास्ति** आदि घोषणाओं में इन्हीं सत्यों की घोषणा की गई है। कोई आश्चर्य नहीं कि कल को चलकर विज्ञान भी इन घोषणाओं का समर्थन करने लगे और इसकी पुष्टि के प्रमाण जुटाने लगे।

जो भी हो, इतना सही है कि प्रकृति और उसके अधिपति परमात्मा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना हर किसी के लिए संभव नहीं है। दोनों ही रहस्यपूर्ण हैं, दोनों का या कहें कि दोनों के समुच्चय एक ब्रह्म का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसे स्थूल और सीमित साधनों, उपकरणों द्वारा नहीं जाना जा सकता। न ही मनुष्य की सीमित सामर्थ्य के यह बस में है कि वह वस्तुस्थिति को जान सके। अस्तु, यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि अपने आस-पास का यह सारा जगत अनेक रहस्यों के आवरण में लिपटा हुआ है। उसे जानना, पूरी तरह समझना शायद ही कभी संभव हो सके। पूर्ण ज्ञान की कुंजी बताते हुए ऋषिगणों ने यही कहा है—**आत्मानं विद्धि, 'आत्मावाऽरेज्ञातव्य'** अर्थात अपने को जानो, अपने को पहचानो। इस वाक्य में, पिंड में ब्रह्मांड के रहस्यों के निहित होने की परिकल्पना का प्रतिपादन है। यही दर्शन का सार है।

❐

चैतन्य ऊर्जा का आदि-स्त्रोत सूर्य

भारतीय मनीषियों ने आत्मा की तुलना सूर्य से की है और जीवात्मा का स्वरूप प्रकाश बिंदु के रूप में वर्णित किया है। निराकार साधना में आज्ञाचक्र के स्थान पर, भृकुटि मध्य में सूर्य सदृश तेजस्वी प्रकाश का ध्यान किया जाता है। उच्चस्तरीय अध्यात्म साधनाओं में, ज्योति अवतरण में, प्राणाकर्षण प्राणायाम में सूर्य के समान तेजस्वी प्रकाश का ध्यान किया जाता है। सूर्य हमारे जीवजगत का केंद्र है। सौरपरिवार अपने इसी अभिभावक के इर्द-गिर्द परिक्रमा करते हैं। अणु की संरचना भी इसी प्रकार की है कि उसकी तुलना सौरपरिवार से की जा सकती है। अणु का नाभिक एक छोटा सूर्य है। दोनों की रीति-नीति एवं क्रियापद्धति एक समान है। जीव और ब्रह्म की सत्ता भी इसी प्रकार समझी जा सकी है।

सूर्य देखने में ही छोटा लगता है अन्यथा वह है बहुत बड़ा। धरती पर खड़े होकर देखें तो दिन में सूर्य और रात में चंद्रमा दोनों ही लगभग एकसी गोलाई के लगते हैं, पर दोनों के आकार-प्रकार और स्वरूप में बहुत अंतर है। चंद्रमा का व्यास २१६० मील है जबकि सूर्य का घेरा ८,६४,००० मील का है। इस व्यास वाले सूर्य के इर्द-गिर्द भी उसकी कई परिधियाँ है। दूरबीन से देखने पर सूर्य के इर्द-गिर्द पीले, गुलाबी रंगों का एक वलय सा दिखाई पड़ता है। १०-१५ हजार किलोमीटर की इस पट्टी को सूर्य का वर्णमंडल क्रामोस्फियर कहते हैं। लगभग १०,००० डिगरी तापमान के इस क्षेत्र में प्रायः नुकीली ज्वालाएँ उछलती हैं तथा उनकी ऊँचाई १०,००० किलोमीटर तक उभरती देखी गई है।

सूर्य पृथ्वी से ३,३०,००० गुना बड़ा है। सूर्य का सबसे निकटवर्ती और छोटा ग्रह बुध है। उसका व्यास मात्र ३०१० मील है, मंगल कुछ बड़ा है अर्थात ४२०० मील। इनकी तुलना में पृथ्वी बड़ी है। उसका व्यास ७९१३ मील है। इसे शुक्र के समतुल्य कहा जा सकता है। प्राप्त जानकारी के अनुसार सौरमंडल के सदस्यों में सबसे बड़ा वृहस्पति है।

उसका व्यास ८३,८०० मील है अर्थात पृथ्वी से ११ गुना बड़ा। इसके बाद शनि का नंबर आता है। वह ७१५००० मील व्यास का है। शनिश्चर के दस गुना अधिक चंद्रमा है। इनमें से टाइटन पृथ्वी के चंद्रमा से भी बड़ा है।

नए खोजे गए तीन ग्रह यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो हैं। प्लूटो सूर्य से सर्वाधिक दूरी पर है। वह अपनी धुरी पर तो छह दिन में ही घूम जाता है, पर सूर्य की एक परिक्रमा करने में २४८ वर्ष लगते हैं।

अपना सूर्य जिस मंदाकिनी के गर्भ में है, उसमें रहते हुए भी प्रति सेकंड २०० किलोमीटर की गति से अपनी निर्धारित कक्षा में भी भ्रमण करता रहता है।

ब्रिटेन के बरमिंघम विश्वविद्यालय के भौतिकीविद डॉ. एच. जी. वानउररी के अनुसार, सूर्य दिन में नौ बार काँपता है। यह कपकपी एक बार में १६० मिनट तक कभी-कभी चलती है। ऐसा माना जाता है कि सूर्य में हाइड्रोजन ईंधन की भट्‌ठी धधक रही है। सूर्य इतना विशाल है कि इसमें १० लाख अरब टन हाइड्रोजन ईंधन एक सेकंड मात्र में फुँक जाता है। यह खुराक खाकर भी उसका पेट नहीं भरता। कहा जाता है कि इतने पर भी कम आहार के कारण वह ठंढा होता चला जा रहा है।

सूर्य का भौतिक दृष्टि से ही नहीं, आध्यात्मिक दृष्टि से महत्त्व अपनी जगह अलग ही है। उसे सविता देवता प्राण ऊर्जा का महत् स्रोत कहा गया है। इन दिनों ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, दुर्गा, गणेश, हनुमान आदि देवताओं का बाहुल्य है। सूर्यमंदिरों की संख्या इनकी तुलना में कम है तो भी पुरातनकाल के देवालयों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि किसी समय सूर्य ही प्रमुख देवता था और उसी की उपासना को प्रमुखता प्राप्त थी। मंदिर भी उन्हीं के बनते थे। पाँच सौ ऐसे पुराने मंदिरों में उन्हीं की बहुलता है।

गोपाडि (ग्वालियर) क्षेत्र में एक पुरातन सूर्यमंदिर था, जिसके अब खंडहर ही शेष हैं। शाकल (स्यालकोट) के सूर्यमंदिर का उल्लेख ह्वेनसाँग ने किया है। मोटेरा (गुजरात), कोणार्क (उड़ीसा), खजुराहो,

तिरुपति बालाजी (दक्षिण), मडखेरा (उ. प्र.) के पुरातन सूर्यमंदिर यद्यपि जराजीर्ण स्थिति में जा पहुँचे हैं तो भी यह साक्षी प्रस्तुत करते हैं कि कभी भारत में सूर्योपासना की प्रधानता रही है।

वृत्ताकार सूर्य को बालाजी कहते हैं। बालाजी के नाम से मध्यकाल में सूर्य की उपासना होती रही है। अब कोई-कोई इस शब्द का अर्थ हनुमान जी से भी लगाते हैं।

कुषाणकाल में सूर्योपासना एशिया के अधिकांश भाग में प्रचलित थी। मिस्र और ईरान में इस्लाम के आगमन से पूर्व सूर्य संप्रदाय का अधिपत्य था। उस समय की प्रतिमाओं और शिलालेखों से प्रकट है कि इन क्षेत्रों में उपासना के लिए सूर्य को ही प्रमुख आधार माना जाता रहा है।

ऋग्वेद १/१२५/१ में सूर्य को जगत की आत्मा बताया गया है। इसका अर्थ हुआ—इस पृथ्वी पर जो चेतना एवं हलचल है, उसका उद्‌गम स्रोत सूर्य है। उससे हमें गरमी और रोशनी ही नहीं मिलती इसके अतिरिक्त वह भी मिलता है जो चेतना से संबंधित है।

प्रख्यात गायत्री मंत्र सूर्य उपासना का मंत्र है। उसका देवता सविता है। सविता के भर्ग की याचना की गई है। उस भर्ग को प्रगतिशील प्रेरणा में नियोजित करने का अनुरोध-आग्रह है।

बारह महीनों के कारण सूर्य को द्वादश आदित्य भी कहा जाता है। षटऋतुएँ उसकी पत्नियाँ मानी गई हैं। ऊषा को उसकी प्रेमिका और संज्ञा या संध्या को पटरानी के रूप में निरूपित किया गया है। यह कथा प्रतिपादन सूर्य की मूलभूत क्षमता के अनेकानेक प्रयोजनों में प्रयुक्त होने की विधा पर प्रकाश डालते हैं।

भगवान राम को सूर्यवंशी माना जाता है। कुंती ने पांडवों को सूर्योपासना के आधार पर उत्पन्न किया था, इसलिए वे भी प्रकारांतर से सूर्यवंशी हुए। चंद्रमा भी सूर्य से ही प्रकाश ग्रहण करता है इसलिए चंद्रवंशी भी सूर्योपासना में वैसी ही अनुरक्ति प्रकट करते हैं।

हिंदू देवताओं का संख्या विस्तार जितनी तेजी से हुआ है उसे देखते हुए आश्चर्य होता है। सभ्यता के आरंभ में सूर्य ही एकमात्र

उपास्य थे। प्रत्यक्ष देवता के सम्मुख वही सर्वसाधारण के सामने रहता है। उसके कारण मिलने वाली गरमी, रोशनी से न केवल देखने की सुविधा होती है वरन जीवनचर्या के साथ जुड़े हुए अनेकानेक प्रयोजन भी पूरे होते हैं, इस तथ्य को जैसे-जैसे अधिक अच्छी तरह समझा गया वैसे-वैसे सूर्य का महत्त्व भी अधिक अच्छी तरह समझा गया। रात्रि के अंधकार में होने वाली असुविधा ने इस तथ्य पर तुलनात्मक अध्ययन का अवसर प्रदान किया और लोग सूर्य की गरिमा के प्रति अधिकाधिक श्रद्धावान होते चले गए। अरुणोदय तथा अस्तकाल में उनकी पहुँचाई एवं विदाई के लिए संध्यावंदन का नियम बना। इसके लिए सूर्योपस्थान का सरल किंतु भावभरा विधान अपनाया गया। अभ्यर्थना उपचार में सूर्यार्घ दान के रूप में जल चढ़ाने की परंपरा चली। सर्वसाधारण के लिए वह सर्वसुलभ जो थी।

अन्य देवताओं का उद्भव संभवतः सूर्य परिवार के रूप में ही हुआ है। सप्त वर्ण सप्त अश्व को जब सूर्य का अविच्छिन्न अंग माना गया तो फिर उनकी पृथक-पृथक स्थापना और अभ्यर्थना की उमंग उठी और व्यवस्था बनी होगी। वैदिक देवताओं में सात प्रमुख हैं। ऋषियों में भी मूर्द्धन्य सात ही थे। सात लोक-सात महाद्वीप की मान्यता भी सूर्य विज्ञान के भेद-प्रभेदों पर प्रकाश डालने के रूप में आविर्भूत हुई। सुविदित है कि शरीर में रस, रक्त, मज्जा, अस्थि, मांस, मेदा, वीर्य आदि सात धातुएँ हैं। सूक्ष्मशरीर में षटचक्रों और उनके अधिपति सहस्रार को मिलाकर सप्तधाराएँ बनती हैं। रत्नों में सात ही प्रमुख हैं। स्वर सप्तक की तरह इन सभी की संगति सूर्य के सप्त अश्वों के साथ बैठती है। अध्यात्म और विज्ञान की दोनों ही धाराएँ यह बताती हैं कि चेतना और प्रकृति के दोनों ही क्षेत्रों में जिन सप्त धाराओं के प्रवाहित होने की परिकल्पनाएँ की गई हैं, वे सूर्य से संबंधित हैं। पुराणों में इन्हें भगवान मंदिर के सप्त सभासद भी बताया गया। कहीं-कहीं पत्नियाँ भी कहा गया है। योग विज्ञान में जिन प्रमुख सप्त नाड़ियों का वर्णन है वे रक्तवाहिनी धमनियाँ नहीं, वरन लोक-लोकांतरों से आकर मानवी काया को गतिशील एवं समुन्नत बनाने वाली विभूतियाँ ही हैं। ऋद्धि-

सिद्धियों का स्रोत इन्ही को माना और स्थिरता तथा प्रगति के लिए इनके सहारे मिलने वाले अनुदानों को दैवी अनुग्रह के रूप में गिना गया है। काल गणना में सप्ताह का सर्वाधिक महत्त्व है। ज्योतिर्विज्ञान का गतिचक्र इन्हीं के आधार पर आगे बढ़ता है।

ऋग्वेद के १/१६४/८ में कहा गया है—धरती, आकाशस्थ सूर्य की पत्नी है, वह उसके प्रति समर्पित है। बादलों के माध्यम से वह गर्भ धारण करती है। उस विवेचना के फलस्वरूप प्राणि वर्ग का प्रजनन करती है।

मंदिर निर्माण के इतिहास में वाराह पुराण (१७७/५९/७२) के अनुसार राजा शांब ने तीन सूर्य मंदिरों की स्थापना उदयगिरि एवं शांबपुर क्षेत्रों में कराई। इनमें क्रमशः प्रातः, मध्याह्न और अस्त कालक सूर्यों की प्रतिमाएँ हैं।

चीनी तीर्थयात्री ह्वेनसाँग ने अपने यात्रा वर्णन में शांबपुर के सूर्य मंदिर में अवस्थित स्वर्ण प्रतिमा का वर्णन किया है। डानसन ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ इंडिया' में इसी प्रतिमा को २३० मन सोने से बनी बताया है। सन् ७१२ के मुसलिम आक्रमण से उसके नष्ट होने का उल्लेख किया है।

वैदिक देवताओं में इंद्र, अर्वमा, पूषा, मित्र, वरुण, विष्णु, त्वष्ट आदि नामों का वर्णन है। वे प्रकारांतर से सूर्य के ही अर्थबोधक नाम हैं। इस प्रकार वेदों में पाया जाने वाला बहुदेववाद भी अंततः एक ही ब्रह्म को सद्विदों द्वारा '**बहुधा वदन्ति**' की मान्यता में समेट लेता है।

सविता की उपासना में सूर्योपस्थान और सूर्यार्घदान की विशेष महत्ता है। हाथ ऊँचे करके सूर्योपस्थान में भी गायत्री जप किया जाता है और सूर्यार्घ के रूप में भी गायत्री मंत्र का ही प्रयोग होता है। स्कंद पुराण ४/९/४६ में कहा गया है—"गायत्री मंत्र द्वारा अभिमंत्रित जल को जिसने तीन बार सूर्य के समक्ष अर्घ्य प्रदान किया उसने तीनों लोकों की भलाई के लिए बहुत कुछ किया। तीन अंजलियों का अर्घ्यदान तीन लोकों के कल्याण के लिए है। ऐसा अर्घ्यदान गायत्री युक्त होना चाहिए।" यथा—

गायत्रीमन्त्रतोयाढ्य दत्तं येनान्जलित्रयम्।
काले सवित्रे किं न स्यात्तेन दत्तं जगत्त्रयम्॥

स्कंद पुराण काशी खंड पूर्वार्द्ध ९/५४ में सूर्य और गायत्री को वाच्य वाचक की कत्थक और कथन की उपमा दी गई है। दोनों की एकात्मता सिद्ध की गई है। यथा—

वाच्यवाचकम्सबन्धोत्र गायत्र्याः सवितुर्द्वयोः।
वाच्योऽसौसविता साक्षाद् गायत्री वाचिका परा॥

गायत्री उपासक की परमगति सूर्यलोक में पहुँचने के रूप में मानी गई है। पद्म पुराण में कहा गया है—जो जितेंद्रिय ब्रह्मपरायण गायत्री की उपासना करता है, वह जीवनमुक्त होकर सूर्यलोक से परम पद प्राप्त करता है। यथा—

तां दैवीमुपतिष्ठन्ते ब्राह्मणा ये जितेन्द्रियाः।
सूर्य लोकं ते प्रयान्ति क्रमान्मुक्तिं च पार्थिव॥

श्रुति वचन है—'**यः सन्ध्यामुपासते ब्रह्मैव तदुपासते।**' अर्थात जो संध्योपासना करता है, वह ब्रह्म की ही उपासना है।

यह परब्रह्म क्या है ? इसका उत्तर देते हुए छांदोग्य में कहा है—'**आदित्यो ब्रह्म।**' अर्थात उस ब्रह्म का प्रतीक आदित्य है। तैत्तिरीय आरण्यक में भी इस मत की पुष्टि की गई है। उसके २/२ में उल्लेख है—'**असावदित्यो ब्रह्म।**' अर्थात यह आदित्य ब्रह्म ही है।

गायत्री विनियोग में उसका देवता—उद्गम स्रोत सविता माना गया है। यह सविता और आदित्य एक ही हैं। शतपथ ब्राह्मण ६/३/१/२० का कथन है—'**असौ वा आदित्यो देवः सविता।**' अर्थात यह आदित्य-सूर्य ही सविता है। इस मत की पुष्टि दैवत कांड ४/३१ में भी मिलती है। कहा गया है—'**आदित्योऽपि सवितैवोच्यते**' अर्थात आदित्य को ही सविता कहते हैं।

सविता की आराधना एवं महाप्रज्ञा की उपासना में उस दिव्य प्रकाश से जिस प्रेरणा को ग्रहण किए जाने की प्रार्थना की जाती है, वह अकारण नहीं है। हम सूर्य के संबंध में या तो अत्यल्प जानकारी

रखते हैं अथवा उसे स्थूल दृष्टि से एक जलता हुआ पिंड भर मानते हैं, इसी कारण वांछित लाभ नहीं उठा पाते।

अपनी पृथ्वी तक सूर्य के प्रकाश की थोड़ी सी ही किरणें आ पाती हैं इसलिए हमें सूर्य के प्रकाश का बहुत छोटा अंश ही दिखाई व समझ पड़ता है। सूर्य प्रकाश की बहुत अधिक मात्रा तो अन्य दिशाओं में ही प्रवाहित होती रहती है। मनुष्य को भी परमात्मा का स्वल्प सामर्थ्य वाला अंश ही प्राप्त हुआ है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि परमात्म सूर्य के प्रकाश का न्यूनतम अंश ही मनुष्य को अपने भू-लोक को प्राप्त हुआ है। उसकी समग्र सत्ता जो असीम ब्रह्मांड में बिखरी पड़ी है, इतनी अधिक है कि उसे ठीक प्रकार सोच-समझ पाना तो दूर रहा, उसका अनुमान लगा पाना भी अपने छोटे से मस्तिष्क के लिए असंभव ही है। इतने पर भी अपनी सत्ता को तो जाना-समझा ही जा सकता है। अपने आत्मस्वरूप का यदि बोध हो सके तो प्रतीत होगा कि परम चेतना की एक छोटी किरण होते हुए भी मानवी चेतना कितनी प्रचंड है? इस प्रचंडता का स्वरूप और उपयोग यदि समझा जा सके तो पुरुष से पुरुषोत्तम और नर से नारायण बनने की संभावना मूर्तिमान होकर सामने आ सकती है।

रंगों का जादू भरा संसार, मनुष्य के लिए दैवी अनुदान

प्रकाश क्या है? देखने में उसे सफेद चमक भर कहा जाता है, पर विश्लेषण करने पर उसके अंतराल में कुछ विशिष्ट शक्तिधाराओं का समुच्चय पाया जाता है। इन्हें रंग कहते हैं। सूर्य किरणों में सात रंग हैं इसलिए सविता देवता को अश्वों के रथ पर सवार होकर परिभ्रमण करते हुए निश्चित किया गया है। किरणों का विश्लेषण करने या उन्हें सात विशेषताओं से युक्त—सात रंगों के रूप में देखा गया है।

इस रंगों की अपनी-अपनी विशेषता है। उन सबके पृथक-पृथक प्रभाव शरीर और मन पर पड़ते हैं। इसलिए उनका उपयोग उसी प्रकार करने के लिए परामर्श दिया जाता है जैसा कि भोजन में आवश्यक तत्त्वों का समन्वय रखने का प्रतिपादन किया जाता है।

मनुष्य जीवन की एक अविज्ञात आवश्यकता प्रकाश की है। प्रकाश के साथ गरमी भी जुड़ी होती है। दोनों के समन्वय से विस्तार और हलचल का लाभ मिलता है। इसके अभाव से जड़ता छाने लगेगी और विकास-विस्तार का क्रम अवरुद्ध हो जाएगा।

धरती पर जीवन का अवतरण स्थानीय रासायनिक संपदा के साथ सूर्य ऊर्जा का सम्मिश्रण होने पर ही संभव हुआ है। यदि यह सुयोग न बना होता तो फिर नेपच्यून, प्लेटो ग्रहों की धरती भी शून्य तापमान से नीचे की स्थिति में रहकर निर्जीव स्थिति में दिन गुजार रही होती। सूर्य को जीवन कहा गया है। पुराणों में आदित्य का पति के और पृथ्वी का पत्नी के रूप में वर्णन हुआ है तथा प्राणियों की उत्पत्ति उन्हीं दोनों के सुयोग से संभव हुई बताई गई है। वैदिक प्रतिपादन में सूर्य को ही इस जगत की आत्मा कहा गया है। श्रुति वचन है—

सौर किरणों में विद्यमान सभी वर्णों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। जो पदार्थ जिन किरणों को अधिक मात्रा में ग्रहण करता है वह उसी रंग का दृष्टिगोचर होने लगता है। यह हमारी आँखों की कमी है, जिसके कारण प्रकाश केवल सफेद ही दीखता है। वस्तुतः उसमें स्थूल रूप से सात रंगों का सम्मिश्रण है। जिसे इंद्रधनुष के रूप में किरणों पर जल-कण चमकते समय देखा जा सकता है।

सूर्य की प्रकाश किरणों के सात रंग हैं। किंतु उनके हलके-भारी सम्मिश्रणों से प्रायः दस लाख रंग बन सकते हैं। इनमें से विभिन्न जीव-जंतु अपनी-अपनी नेत्र क्षमता के अनुरूप रंग ही देख सकते हैं। मनुष्य की आँखें मात्र ३७८ रंग देख सकने में समर्थ हैं। हमें उतने पर ही संतोष करना पड़ता है।

सूर्य किंरणों के माध्यम से धरती पर आने वाले सप्त रंगों को 'सप्त अश्व' कहा गया है और उस रथ पर सवार होकर उनके परिभ्रमण का वर्णन किया गया है। इस आंलकारिक वर्णन से तात्पर्य यह है कि हर रंग की अपनी-अपनी विशेषता है। वस्तुओं के गुण धर्मों में इसी आधार पर भिन्नता पाई जाती है।

एक और ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि यद्यपि हमारे नेत्र सात रंगों की प्रख्यात प्रकाश किरणों को ही देख पाते हैं, तथापि नेत्रों की पकड़ से बाहर भी उसकी विलक्षणता और भी अद्भुत दृश्यमान ज्योति की तुलना में अत्यधिक विस्तृत है। ब्रह्मांडीय किरणें, गामा किरणें, एक्स किरणें, परा बैंगनी प्रकाश, ऊष्मा तंरगें, रेडियो तरंगें प्रकाश परिवार के अंतर्गत ही आती हैं।

इन सबमें शक्तिशाली और अद्भुत हैं—ब्रह्मांडीय किरणें। अनंत आकाश से विद्युत चुंबकीय किरणों की इस धरती पर निरंतर वैसी ही वर्षा होती रहती है जैसे वर्षा ऋतु में बादलों से पानी की या दिन में सूर्य से ऊष्मा की वर्षा होती है। कुछ समय पहले गामा किरणें शक्ति की दृष्टि से अग्रणी मानी जाती थीं, पर अब विज्ञान जगत का ध्यान 'ब्रह्मांड किरणों' पर केंद्रित है। शक्ति-स्रोत के रूप में उन्हें ही अब सर्वोपरि माना जाता है। इन इंद्रियातीत किरणों को विज्ञान की भाषा में 'कॉस्मिक रेज' कहते हैं।

इन 'कॉस्मिक रेंज' के प्रभावों का परोक्षतः सामना तो पूरे जीव जगत को करना ही पड़ता है, स्थूल रंगों की भी सभी जीवधारियों पर प्रतिक्रिया होती है। मानवी शरीर पर इन रंगों की मात्रा न्यूनाधिक हो जाने से स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार आवश्यक रासायनिक पदार्थ कम होने पर कई प्रकार के रोग एवं असंतुलन उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार प्रकाश रंगों की उपयुक्त मात्रा में कारणवश कमी-वेशी हो जाने पर भी स्वास्थ्य-संकट उत्पन्न होता है। अतएव जहाँ चिकित्सा उपचार में वनस्पतियों, क्षारों तथा खनिजों का उपयोग करके तद्विषयक घट-बढ़ को ठीक किया जाता है, उसी प्रकार विज्ञजन रंगों की न्यूनाधिकता हो जाने के संबंध में उतनी ही गहराई से जाँच-पड़ताल करते एवं क्षतिपूर्ति हेतु 'क्रोमोपैथी' (वर्ण चिकित्सा) के माध्यम से चिकित्सा करते हैं।

विभिन्न प्रकार के रंग विभिन्न प्रकार के मनोभाव जाग्रत करने की चमत्कारिक क्षमता रखते हैं। विवाह-शादियों और ऐसे किन्हीं धर्मोत्सवों में हरी, पीली, लाल, नीली झंडियों से द्वार सजाते हैं तो संबंधित व्यक्ति ही नहीं, सभी वहाँ से गुजरने वाले दर्शक भी प्रसन्न हो उठते हैं, यह रंगों का अज्ञात मनोवैज्ञानिक प्रभाव ही है। वास्तविकता यह है कि रंगों का सौंदर्य और साज-सजावट से सीधा संबंध है। सौंदर्य आत्मा का एक गुण है। यदि उसकी उपयुक्त जानकारी न हो तो लाभ उठाने के स्थान पर हानि हो सकती है। घर, दरवाजे, खिड़कियाँ, दीवारों के बेल-बूटों, वस्त्रों का चयन इस संबंध में कौन सा रंग कैसी मनोभूमि उत्पन्न करता है, इसकी जानकारी हो जाए तो जीवन में प्रसन्नता का अभिवर्द्धन किया जा सकता है, उसे सुधारा और सँवारा जा सकता है।

रंगों से विशेष प्रकार का वातावरण बनता है। वस्त्रों में, कमरे की दीवारों में, फर्नीचर में किस प्रकार के रंग लगे होते हैं; वे अपना प्रभाव उनका उपयोग करने वालों पर भी छोड़ते हैं। लाल रंग गरमी, उत्तेजना और चिड़चिड़ापन उत्पन्न करता है। इससे स्नायु विकार हो सकते हैं। इसके विपरीत नीला रंग शीतल और शांतिदायक होता है। गरमी वाले मौसम या स्थान में नीले रंग का उपयोग करने से आँखों के माध्यम से शरीर को भी राहत मिलती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण रंगीन चश्मे हैं। लाल काँच वाला चश्मा लगाकर निकला जाए तो चारों ओर आग बरसती दिखाई पड़ेगी और सिर गरम होने लगेगा। इसके विपरीत हरा या नीला चश्मा लगाकर निकलने पर कड़ी धूप भी हलकी प्रतीत होती है और बदली सी छाई लगती है। गरमी दूर करने के लिए यह छाता लगाने जैसा उपाय है।

भगवती सरस्वती ज्ञान और मधुरता की देवी हैं, उनकी कल्पना में रंग का विशेष महत्त्व है। ऋषि ने उनको—

या कुन्देन्दु तुषार हार धवला या शुभ्र वस्त्रावृता॥

वह श्वेत वर्ण के वस्त्र धारण किए हुए है। यहाँ श्वेत रंगज्ञान, मधुरता, गंभीरता एवं पवित्रता का उद्‌बोधक है। इसीलिए कुमारी कन्याओं और उन महिलाओं को जिनके पतियों का निधन हो गया होता है श्वेत वस्त्र धारण कराने की भारतीय परंपरा है। श्वेत वस्त्र से दूसरों के मन में भी द्वेष-दुर्भाव नहीं आते, इसलिए विद्यालयों में जाने वाली कन्याओं को श्वेत अथवा हलकी एक रंग की ही साड़ी पहननी चाहिए, ऐसी मान्यता है।

शरीर की धातुओं और कार्यपद्धतियों पर रंगों का भिन्न-भिन्न प्रभाव होता है और इस आधार पर नए 'रंग चिकित्सा विज्ञान' का नया ढाँचा खड़ा हो रहा है। सरदी-गरमी की मात्रा घटाने-बढ़ाने में भी रंग सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त उनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी कम नहीं है। हर रंग में कुछ विशेष भावनाएँ उत्तेजित एवं शांत करने का गुण है। जो लोग जिस प्रवृत्ति की विशेषता अपने भीतर बनाए होते हैं, वे तद्‌नुरूप रंग पसंद करते और चुनते हैं। इसी प्रकार जिन्हें जिस भावना से प्रेरित, प्रभावित करना होता है उनके लिए उस रंग के आवरण-आच्छादित जुटाने का प्रबंध आवश्यक होता है। फूलों के बगीचे में परिभ्रमण करने, उन्हें घर-आँगन में लगाने, मेज पर गुलदस्ता सजाने में रंगों से मस्तिष्क को प्रभावित करने की आवश्यकता पूर्ण होती है। शोभा, सुरुचि और कला सौंदर्य का इसमें समावेश तो है ही।

जर्मनी की एक कैमरा बनाने वाली फेक्टरी में एक प्रयोग किया गया। उसकी दीवारें, दरवाजे सब गहरे नीले रंग से रँग दिए गए। श्रमिकों पर उसका यह प्रभाव हुआ कि वे अधिक फुरती और परिश्रम से काम करने लगे। उत्पादन बढ़ने लगा। आय भी बढ़ने लगी। किंतु बाद में उस रंग के ऊपर काला जैसा कोई रंग पोतकर बिगाड़ दिया गया। उसका फल कुछ और ही हुआ। मजदूरों में निराशा, आलस, उद्वेग की भावनाएँ भड़कने लगीं। उससे उत्पादन बहुत अधिक गिरा।

एक कारखाने के श्रमिकों को अधिक प्यास लगने और अधिक बार पेशाब जाने की शिकायत बढ़ गई। फलतः बीच-बीच में काम छूटता और उत्पादन कम होता। इस नई व्यथा का कारण विशेषज्ञों को बुलाकर तलाश कराया गया तो प्रतीत हुआ कि कमरे काले रंग के पुते हुए थे। वह रंग हटाकर हरा रंग पुताया गया तो उस व्यथा से सहज छुटकारा मिल गया। एक दूसरे कारखाने के मजदूर जिन लोहे के बकसों को ढोते थे उनके अधिक वजनी होने की शिकायत करते थे। जब उनका रंग बदलकर हरा करा दिया गया तो सभी की शिकायत दूर हो गई और अपेक्षाकृत हलके लगने लगे।

लंदन की टेम्स नदी के पुल पर से कूदकर आत्महत्या करने वालों की संख्या जिन दिनों असाधारण रूप से बढ़ गई थी, उन दिनों इसका कारण तलाशने वालों में से कुछ विशेषज्ञों ने यह सलाह दी कि पुल पर लगाए गए काले रंग को हटाकर उसे बदल दिया जाए। ऐसा करने पर आत्महत्याओं की संख्या आश्चर्यजनक रूप से घट गई।

अनेक अस्पतालों में कमरों के परदों के रंगों में हेर-फेर करके उनका प्रभाव देखा गया तो परिणाम सामने आया कि लाल रंग गरमी व उत्तेजना बढ़ाता है और नीला तथा हरा ठंढक पहुँचाता है।

वैज्ञानिक अपने प्रयोगों से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि नीले रंग के साथ स्नेह, सौजन्य, शांति, पवित्रता जैसी प्रवृत्तियाँ जुड़ती हैं। लाल रंग उग्रता, उत्तेजना, संघर्ष का प्रतीक है। सफेद में सादगी, सात्त्विकता, सरलता की क्षमता है। चाकलेटी रंग में एकता, ईमानदारी, सज्जनता के गुण हैं। पीले रंग में संयम, आदर्श, पुण्य, परोपकार का बाहुल्य है। हरे रंग में ताजगी, उत्साह, स्फूर्ति एवं शीतलता का प्रभाव है। चाकलेटी रंग कल्पनाशीलता उभारता है। सिलहटी में दूरदर्शी-बुद्धिमत्ता की विशेषता है। काला रंग तमोगुणी है वह निराशा, शोक, दुःख एवं

बोझिल मनोवृत्ति का परिचायक है। नारंगी रंग जीवन में आत्म-विश्वास, साहस की जानकारी देता है। गुलाबी रंग में आशाएँ, उमंगें और सृजन की मनोभूमि बनाने की विशेषता है।

बुद्धिशील लोगों को गहरा लाल रंग पसंद नहीं होता। एक अस्पताल में एक मानस चिकित्सक के पास एक प्रोफेसर आए, उन्होंने बताया कि उनके मस्तिष्क में न जाने क्यों क्षोभ और उद्विग्नता बनी रहती है, उन्हें प्रसन्नता नहीं रहती। चिकित्सक महोदय ने परिस्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन किया पर कोई विशेष कारण जब समझ में न आया तो वे एक दिन उनके घर पहुँचे। घर जाकर देखा कि उनकी बैठक में खिड़कियों, दरवाजों के अधिकांश परदे लाल हैं। पूछने पर मालूम हुआ कि उनकी धर्मपत्नी भी अधिकांश लाल रंग की साड़ी और ब्लाउज पहनती हैं। उन्हें घर के सब फर्श परदे बदलकर हरे और नीले रंग के कर देने की सलाह दी गई, उसी प्रकार उनकी धर्मपत्नी ने भी अपनी वेशभूषा बदल डाली, उसका तात्कालिक प्रभाव परिलक्षित हुआ। प्रोफेसर की सारी उद्विग्नता और परेशानी जाती रही।

नीले रंग के संबंध में यह माना जाता है कि उसे देखकर उदारता और सौंदर्य की प्रेरणा मिलती है। माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के चरित्र-निर्माण में नीले रंग का विशेष प्रभाव देखा गया है। इन आयु के बच्चे-बच्चियों को नीले रंग के वस्त्रों का संपर्क मिले तो अति लाभदायक होता है। अमेरिका में एक प्रयोग करके देखा गया कि यदि बिजली का प्रकाश, उसके ट्यूब नीले कर दिए जाते हैं तो मच्छर दूर भागते हैं। नीला रंग मच्छरों को कष्टदायक होता है। वहाँ धूल के रंग का प्रयोग करके अन्य कीटाणुओं से रक्षा करने में सफलता मिली है।

लाल रंग आक्रामकता, हिंसा और स्फूर्ति का प्रतीक है। साँड़ को यदि लाल रंग दिखा दिया जाए तो वह तुरंत भड़क उठता है। इसी तरह केसरिया रंग वीरता और बलिदान का प्रेरक है। यह दोनों ही रंग

इसीलिए युद्ध में प्रयुक्त होते हैं। मिलिटरी के बड़े अफसरों के कंधे पर पी–कैपों पर लाल पट्टे इसीलिए बाँधे जाते हैं। उन्हें देखकर जवानों में रोष और जोश पैदा होता है। यह रंग व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन के उपयोग का नहीं होता। इसी कारण काले और भूरे रंग भी शक्ति के प्रतीक तो हैं किंतु उनका आंशिक उपयोग साज–सज्जा में ही हो सकता है।

जीवित प्राणियों को प्रभावित करने में गुलाबी रंग के महत्त्व को बहुत पहले से ही लोग जानते रहे हैं। गुलाबी प्रकाश से पौधे अच्छी तरह उगते हैं, पक्षियों की संख्या में वृद्धि होती है, ज्वर, छोटी चेचक, जलकैंसर जैसी बीमारियों पर भी गुलाबी रंग के प्रकाश से आशातीत लाभ होता पाया गया है। अल्माअता के प्रसिद्ध जीवशास्त्री विक्टर इन्यूशियन ने मालेक्युलर बायोलाजी के नए प्रयोगों के दौरान यह सिद्ध किया है कि गुलाबी रोशनी के जैविक कार्य–कलाप उसकी आत्मिक प्रकृति के साथ संबद्ध हैं। उन्होंने अलवर्ट जेंट जोजी (नोबुल पुरस्कार विजेता बायोकेमिस्ट) के जैविक ऊर्जा सिद्धांत को विकसित करते हुए बताया कि गुलाबी रंग के प्रकाश के प्रति जीवधारियों की अत्यधिक संवेदनशीलता उसके अस्तित्व के लिए बहुत अनुकूल पड़ती है। हमारे देश में भी पूजास्थल में गुलाबी रंग के वस्त्र और लघु सर्वतोभद्र चक्र आदि में लाल रंग का बहुत प्रयोग होता रहा है। स्त्रियाँ गुलाबी रंग महावर के रूप में पैरों में लगाती और सिंदूर के रूप में मस्तक में धारण करती हैं उससे सौंदर्यवृद्धि के साथ ही देखने वालों की अंतर्भावनाओं में शक्ति और पवित्रता का विकास होता है।

पीले रंग का प्रेम–भावनाओं से संबंध है। इस बात को भारतीयों ने बहुत पहले जाना था। प्रकृति के अनुरूप वासंती परिधान पहनने की परंपरा अतिप्राचीन है, उपासना अनुष्ठानों में तो उसका महत्त्व और भी अधिक है। वह बौद्धिक क्षमताओं को विकसित करने वाला और

आरोग्यवर्द्धक भी माना गया है। प्रातःकाल उगते हुए पीतवर्ण सूर्य का दर्शन और ध्यान करने से बुद्धि और मेधा विकसित होती है। विवाह-शादियों और उपासना पुरश्चरणों पर पीत-वस्त्र धारण करने की भारतीय परंपरा भी इसीलिए विकसित हुई कि इस रंग के प्रभाव से प्रेम और विवेक का उदय हो। यह दोनों भाव मनुष्य जीवन के कल्याण में बड़े सहायक होते हैं इसलिए पीले रंग का भी अपना विशिष्ट महत्त्व है।

हरा रंग आनंद और प्रसन्नता प्रदान करता है। अधिक बौद्धिक श्रम करने वाले और अस्वस्थ लोगों को यह उपलब्ध न हो तो हरे रंग का प्राकृतिक उपयोग करना चाहिए। जंगलों या पहाड़ों पर जाकर प्रकृति की हरियाली देखकर मन को बड़ी शांति और प्रसन्नता होती है। प्राकृतिक स्थानों के दर्शन और यात्रा का लाभ जिसे भी मिल सके अवश्य उठाना चाहिए। उससे जीवन की थकावट दूर होती है। पर जिसके लिए वह सुलभ न हो—वह अपने घर के आस-पास हरे वृक्ष, शाक-भाजी के पौधे और बेलें उगाकर भी उस आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं।

हरे रंग से कार्यक्षमता भी बढ़ती है। बरसात के दिनों में किसान जितना काम अकेला कर लेता है, ज्येष्ठ में उतना कई आदमी मिलकर नहीं कर पाते। एक बार एक हवाई जहाज बनाने वाले कारखाने में घास के रंग का प्रयोग किया गया। उस पर कृत्रिम रीति से सूर्य का प्रकाश डाला गया तो मजदूरों की कार्यक्षमता में व्यापक वृद्धि हुई।

कजाखिस्तान की राजधानी अल्माअता के क्षेत्र में खुली पहाड़ी पर सूर्य के माध्यम से वर्ण चिकित्सा का एक केंद्र चलाया जा रहा है। इसकी सफलता का अनुपात औषधि चिकित्सा की तुलना में कहीं अधिक है। दमा, चर्म रोग, अपच, अनिद्रा, रक्तचाप जैसे स्थायी प्रकृति के रोगियों को इस आधार पर विशेष लाभ मिला है। यह लोग

औषधि चिकित्सा के फेर में वर्षों का समय और धन गँवा चुके थे। ७० से ८२ प्रतिशत के अच्छे होने की सूचना है जिन्हें पूरी तरह लाभ नहीं हुआ वे भी अपेक्षाकृत संतोषजनक सुधार लेकर वापस लौटे।

केंद्र में पाँच मीटर का एक आयताकार फ्रेम लगा है। उसमें अनेक रंगों के काँच आवश्यकतानुसार फिट किए गए हैं। इनके माध्यम से किरणें एक बिंदु पर एकत्रित की जाती हैं और उन्हें रुग्ण अवयव पर नियत समय तक जमी रहने का प्रबंध किया जाता है। किरणों का उपयोगी अंश ही रोगी तक पहुँचने दिया जाता है। हानिकारक अल्ट्रावायलेट किरणें पहले ही छलनी में छान ली जाती है। एक स्थान पर प्राय: पंद्रह मिनट यह ताप दिया जाता है। चिकित्सा कोर्स एक महीने का है।

सुधरे हुए रोगियों को देखकर हर वर्ष प्रवेश के इच्छुकों के आवेदन बढ़ते जा रहे हैं। स्थान पूरा हो जाने पर उसके विस्तार का नया प्रबंध किया जा रहा है।

प्राकृतिक चिकित्सा के मर्मज्ञ वरनर मैक फेडन का कथन है—"यदि किसी में बीमार रहते हुए भी जीवित रहने की शक्ति है तो यह भी विश्वास किया जाना चाहिए कि वही जीवनीशक्ति उसे रोग से मुक्त कर सकने में भी पूरी तरह सक्षम है। यही सौर वर्ण चिकित्सा का मूलभूत आधार है।"

जैव वैज्ञानिक इन्यूशियन ने सूर्य-किरणों के विश्लेषण के समय पाया कि जैविक क्रिया-कलापों में खरच हुई शक्ति का ६६० से ६८० मिलीमाइक्रोन तक अंश मनुष्य किस प्रकार किरणों से ग्रहण कर लेता है उसे सौर वर्णक्रम (स्पेक्ट्रम) के नारंगी रंग के हिस्से के अध्ययन द्वारा ठीक-ठीक जाना जा सकता है। इन्यूशियन ने इन खोजों में ५ वर्ष से भी अधिक का समय लगाया। एक्स-रे उपकरणों द्वारा, प्रकाश द्वारा जानवरों के शरीर में घातक रेडियेशन द्वारा बीमारियाँ उत्पन्न कीं और फिर गुलाबी प्रकाश से उसका इलाज कर यह पाया

गया कि २५ प्रतिशत रोगग्रस्त जानवर २० दिन में पूर्ण स्वस्थ हो गए। उनका रक्तचाप सामान्य हो गया तथा वे पूर्ण स्वस्थ हो गए। उनका कहना है कि गुलाबी रंग के प्रकाश में अत्यधिक प्रवेशनीयता (ट्रान्सपैरेंटल) के कारण इलेक्ट्रॉन तेजी से विस्फुटित होते हैं जो किसी भी अवयव की संवेदनशीलता की गति बढ़ा देते हैं साथ ही विषाणुओं को मारकर उन्हें बाहर निकाल देते हैं। इसमें जीव की प्रकृति भी एक अंश तक हिस्सा लेती है किंतु रंगों के मेल-जोल का समान प्रभाव सभी पर होता है। अर्थात बहुरंगी सजावट से प्राय: सभी लोगों को प्रसन्नता होती है। विवाह, उत्सवों में या सभामंच पर अनेक तरह के रंगों की झंडियों में काले, भूरे रंग की झंडियाँ भी लगा दी जाएँ तो उनसे भी अप्रसन्नता नहीं होती।

रंग विशेषज्ञ एंथोनी एल्डर के अनुसार बहुमुखी जीवन लालिमा प्रधान होता है। अंतर्मुखी जीवन में नीलाकाश जैसी उदात्त मन:स्थिति होती है। पीले रंग को कर्मठता, तत्परता और उत्तरदायित्व निर्वाह की भावचेतना का प्रतीक माना जा सकता है। हरे रंग को स्थिरता और बुद्धिमत्ता का प्रतिनिधि समझा गया है। एल्डर कहते हैं कि स्वभावगत विशेषताओं को घटाने-बढ़ाने के लिए उन रंगों का बहिष्कार करना चाहिए, जिनमें अभीष्ट विशेषताओं का समावेश है।

रत्नों की अँगूठी नाक, कान, गले में पहनने में जहाँ मनुष्य की संपन्नता का बोध होता है, वहाँ उस रंग के कारण पहनने वाले को लाभ भी होते देखा गया है।

सन १९३८ में आड्रियन हिल नामक चित्रकार ने एक पुस्तक छपवाई जिसका नाम था 'कला बनाम रोग'। उसने इस पुस्तक में चित्रकला एवं वर्ण विज्ञान को स्वास्थ्य संवर्द्धन और रोग-निवारण के लिए महत्त्वपूर्ण माध्यम बताया है।

उसने अपनी अस्पताल की चारपाई पर व्यतीत हुई लंबी अवधि का वर्णन किया है। जिसमें लिखा है कि इन दिनों पीड़ा, असमर्थता,

निराशा एवं ऊब के अतिरिक्त और कोई साथी दीखता न था। डॉक्टर और नर्स अपना-अपना काम करके चले जाते पर निरंतर साथ रहने को कोई तैयार न था। अतः मैंने समीपवर्ती मेज पर रखे हुए एक गुलदस्ते से मित्रता जोड़ी और उसमें लगे हुए रंग-बिरंगे तथा विभिन्न आकार-प्रकार के फूलों को रुचिपूर्वक देखना आरंभ किया। कितने कोमल और कितने उमंग भरे थे वे सब। बच्चों जैसी मुस्कान बिखेरते देखा उन सबको तो मेरा मन बहुत हलका हो गया और उन्हीं की बिरादरी में सम्मिलित हो गया। इस नए सहचरत्व में नया जीवन मिला और मन की मुरझाई दूब फिर से हरी-भरी हो गई। मेरे स्वास्थ्य-सुधार में इस नई बिरादरी ने डॉक्टरों और औषधियों से किसी भी प्रकार कम सहायता नहीं की।

अस्पताल से छुट्टी पाने के उपरांत उसने अपने पुराने प्रकृति पर्यवेक्षण वाले रुझान को कला में सम्मिलित करने और आजीविका का आधार बनाने का निश्चय किया। फलतः सतत अभ्यास से न केवल प्रकृति चितेरा बना वरन अन्य स्तर की कलाकृतियाँ बनाने में भी समर्थ हो गया।

उसने अपनी चित्र चिकित्सा चलाई। जिसका आधार रंगों को दृश्य रूप में प्रस्तुत करके रोगियों की मनोदशा में परिवर्तन करना था। यह समझने-समझाने में देर नहीं लगी कि मानसिक परिवर्तन का किस प्रकार स्वास्थ्य-सुधार के साथ सघन संबंध है। रोगी भरती हुए और अच्छे होते गए। उसने अन्य अस्पतालों को भी अपनी सेवाएँ दीं और विशेषतया विकृत मनःस्थिति वाले रोगियों को रंग उपचार से प्रभावित करने का सिलसिला शुरू किया। इस प्रयास में आशाजनक सफलता मिली।

ठीक ऐसा ही प्रसंग एक यहूदी चित्रकार का भी है। उसका नाम था—हिमन सिनाल। वह सर्वप्रथम बाल मनोरंजन के लिए रंग-बिरंगे

चित्र बनाता था और उनमें पेड़-पौधों, फूलों तथा पशु-पक्षियों की आकृतियाँ बनाकर रंगों से सुसज्जित करता था। जब उसकी आकृतियाँ बालकों में लोकप्रिय हुईं तो उसमें बड़ों के लिए भी इस कला का लाभ देने का निश्चय किया। उसने सैकड़ों चित्र बनाए। वे कला प्रधान नहीं थे वरन विभिन्न मनुष्यों की मानसिक स्थिति का समाधान संवर्द्धन करने के लिए उन्हें बनाया गया। लेखा-जोखा लेने पर अपने समय का यह अभिनव प्रयोग बहुत सफल भी रहा और सराहा भी गया। प्रख्यात कलाकार माइकेल एंजिलो के रोम के गिरजाघरों में बनाए गए रंगीन चित्र अपनी कलाकृति के कारण तो प्रख्यात हैं ही, रंगों के सम्मिश्रण से उन पवित्र स्थानों में उद्भूत प्रभावों की प्रतिक्रिया असाधारण होने के कारण भी उन्हें अद्भुत विलक्षण माना जाता रहा है।

ग्रीक, रोमा, इजिप्ट में देवताओं के गुण और रंग निर्धारित हैं। उन देवताओं की पूजा के लिए भी उसी रंग की वस्तुएँ प्रयुक्त होती हैं। भारतवर्ष में चार वर्णों की संगति चार रंगों से बिठाई गई है। ब्राह्मण का पीला, क्षत्रिय का लाल, वैश्य का नीला और शूद्र का काला बताया गया है। चेकोस्लाविया में बच्चों को बपतिस्मा कराते समय गिरजे में लाल तौलिये से ढककर ले जाया जाता है। आयरलैंड में केसरिया रंग बड़प्पन का प्रतीक माना जाता है।

पुरातन चीन की युवतियाँ अपने पतियों और प्रेमियों को आकर्षित वशवर्ती किए रहने के लिए अपने वस्त्रों का आवश्यकतानुसार उपयोग करती रही हैं। उनकी मान्यता थी कि सफेद रंग के प्रभाव से पुरुष कोमल बन जाते हैं। पीले रंग से उन पर वसंत बहार आती है। नीला रंग वशवर्ती बनाता है। हरे रंग से वे खिंचते चले आते हैं। गुलाबी रंग से वे व्याकुल हो उठते हैं। नीले रंग से उबल पड़ते हैं और लाल रंग के प्रभाव से झल्लाने लगते हैं। काला रंग बीच में दीवार खड़ी करता है।

रंग हमारे जीवन में कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, इसका एहसास हमें सहज हो नहीं पाता। कई ऐसे व्यावहारिक उदाहरण देखने को मिलते हैं, जिनमें जरा से रंग-परिवर्तन से अद्‍भुत परिणाम देखने को मिले हैं। 'इंटीरियर डेकोरेशन' वास्तुकला की एक अभिनव विद्या है। इसमें यही प्रशिक्षण दिया जाता है कि रहने वाले व्यक्ति की मन:स्थिति, उसके परिकर, कार्य के अनुरूप ही रंगों का चयन किया जाए। इसी प्रकार एक बार शिकागो के एक अस्पताल के आपरेशन थियेटर को भीतर से हरा पोतने पर देखा गया कि रोगी अपेक्षाकृत जल्दी बेहोश हो जाते हैं और देर तक उसी स्थिति में बने रहते हैं। एक कारखाने के मजदूर आपस में लड़ने-झगड़ने अधिक लगे। काम में भी शिथिलता आई। इस पर कारखाने की मशीनों पर जो काला रंग पुता था, वह हटाकर हरा रंग कराया गया और अगले ही सप्ताह लड़-झगड़ बंद हो गई। रंग वस्तुत: जीवन की हर गतिविधि को प्रभावित करते हैं। इनके विषय में जितनी भी जानकारी उपलब्ध है, यद्यपि कम है, किंतु है बड़ी रोचक।

पान अमेरिकन एयरवेज के सामने एक संकट आया, वहाँ यात्रियों को आकाशीय बीमारी—मितली की शिकायत बढ़ गई। कारणों की खोज करते हुए उसके भीतरी भाग की पुताई बदली गई। चाकलेटी के स्थान पर हरा रंग कराया गया साथ ही उभरी हुई शिकायत भी दूर हो गई। इसी प्रकार फ्रांस के एक शहर की घटना है। वहाँ एक रेस्टोरेंट के ग्राहक घट गए और जो खाते थे, उसकी मात्रा कम हो गई। इस होटल के मालिक ने उसका रंग बदलवाकर नारंगी करा दिया फलत: दोनों ही शिकायतें दूर हो गईं। एक महिला अपनी क्रियाशक्ति घटा बैठी थी उदास और शिथिल रहती थी। उसे नए सिरे से पीले कपड़े पहनाए गए और वह ठीक हो गई। एक गठिया की मरीज महिला नारंगी रंग के कपड़े पहनने पर ठीक हुई। साबुन में पड़े रंगों के प्रभाव का

अध्ययन करने पर पता चला कि वे स्नान करने वाले पर न केवल अपने रसायनों का वरन रंगों का प्रभाव भी छोड़ रहे थे।

विश्वविख्यात मनोचिकित्सक डॉ. गोल्ड स्फेन ने भिन्न-भिन्न रोगों, कठिनाइयों एवं कुंठाओं से ग्रसित लोगों पर किए गए रंगों के प्रयोगों का विस्तृत विवेचन 'न्यूइंग्लैंड जनरल ऑफ मेडीसिन' में करते हुए लिखा था कि रोजमर्रा के जीवन में प्रयुक्त होने वाले अथवा आकर्षण हेतु पहने जाने वाले वस्त्राभूषणों के रंगों का मानव शरीर पर कितना व कैसे प्रभाव होता है। उनका निष्कर्ष था कि रंगों में परिवर्तन के माध्यम से अनेकों मनोविकार तथा मनो शारीरिक रोगों का शमन संभव है।

यह एक विडंबना ही है कि जो कुछ भी वैभव सविता देवता की सप्तवर्णी किरणों के रूप में हमारे चारों ओर विद्यमान है, उसकी हमें अत्यल्प जानकारी है। स्रष्टा ने सब कुछ सोद्देश्य रचा है। उस लीला जगत को सही परिप्रेक्ष्य में समझकर यदि उससे लाभ उठाने का प्रयास किया जाए तो निश्चित ही ब्राह्मी चेतना के अनुदानों को अपने अनुकूल बनाया जा सकता है। रंगों का रंग-बिरंगा तिलिस्मी संसार न केवल अद्भुत एवं सुंदर है अपितु जीवधारियों के अस्तित्व के लिए अत्यंत अनिवार्य एवं विद्या से परिचित होने पर हितकर भी।

❐

स्त्रष्टा की एक अद्भुत संरचना : पृथ्वी

जीवन का ओर छोर कहाँ है? यों मोटेतौर पर यह उत्तर दिया जा सकता है कि जन्मदिन उसका आरंभ होता है और मरणदिन पर इतिश्री हो जाती है। पर यह स्थूल उत्तर है। सूक्ष्म उत्तर के रूप में यह कहा जाना चाहिए कि जिस दिन ईश्वरीय महातेज में जीव रूप स्फुलिंग प्रकट हुआ, वह उसका जन्मदिन है। योनियों के चक्र में भ्रमण करते हुए उसका यात्राक्रम चल रहा है। वर्तमान मनुष्य जीवन उस जन्मांतरण के महाग्रंथ का एक पृष्ठ मात्र है। उसका अंत तब होगा जब महाप्रलय में ब्रह्म अपने सारे प्रस्तार को अपने आप में समेटकर केंद्रीभूत कर लेगा। जो बात जीवन पर लागू होती है, वही सौरमंडल रूपी महापिंड के एक घटक इस पृथ्वी पर भी लागू होती है, जिस पर करोड़ों वर्षों से जीवधारियों का अस्तित्व रहता आया है।

अपनी पृथ्वी की आयु कितनी है और कितनी व्यतीत हो चुकी, कितनी शेष है, इस पर विशेष अटकलें लगाई जाती रही हैं। हर धर्म संप्रदाय में इस विषय पर चर्चा होती रही है एवं इनका उल्लेख भी मिलता है। ईसाइयों की मान्यता है कि बाइबिल के 'जेनेसिस' में वर्णित गणना के अनुसार आर्क विशप जेम्स अशर ने दावा किया था कि पृथ्वी का जन्म ४००४ ई. पू. में हुआ था।

भारतीय मनुस्मृति, श्री विष्णु पुराण, श्रीमद्भागवत पुराण तथा सिद्धांत शिरोमणि आदि ग्रंथों में भारतीय ज्योतिर्विदों और मनीषियों के हिसाब से पृथ्वी की आयु का अनुमान ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष लगाया गया है। सतयुग ७,२८००० वर्ष, त्रेता १२,९६००० वर्ष, द्वापर ८,६४००० वर्ष, कलियुग ४,३२००० वर्ष इस प्रकार कुल ३३,२०,००० वर्ष आयु बैठती है।

ज्वार और भाटा की रगड़ से जो आयु की गणना की गई है उसके अनुसार भी ४ अरब से ऊपर ही आयु निकलती है। चट्टानों के रसायन व वायुमंडलीय गैसों के परिणाम से भी साढ़े चार अरब वर्ष की पृथ्वी की आयु का संकेत मिलता है। होम्स ने रेडियोधर्मिता और शीशे की सहायता से पृथ्वी की आयु का आकलन साढ़े चार अरब वर्ष किया है।

एक अन्य सिद्धांत वैज्ञानिक श्री सी. फान वीज सैकर का है जिसमें उन्होंने कहा है कि ४ अरब ५० करोड़ वर्ष पहले कोई अति दैत्य सूर्य अपने सूर्य के पास से गुजरा। अपने सूर्य के शरीर का जो टुकड़ा टूटा वह कालांतर में पृथ्वी बनी।

सर जेम्स जीन्स का भी यही मत है कि लगभग साढ़े चार अरब वर्ष पूर्व कोई विशाल तारा सूर्य के समीप होकर गुजरा। उसके और सूर्य के गुरुत्वाकर्षणों में रस्साकशी हुई। इस संघर्ष में सूर्य का एक बड़ा भाग महाभयंकर विस्फोट के साथ टूट गया। उस टूटे भाग से सौरमंडल के अन्य ग्रह बने और उसी मलवे में से चंद्रमा बन गया। चंद्रमा पृथ्वी के समीप होने के कारण धरती के गुरुत्वाकर्षण में जकड़ गया और उसी की परिक्रमा करने लगा।

संभव है इनमें से कोई एक कल्पना सत्य हो अथवा एक भी सत्य नहीं हो, फिर भी एक मोटा अनुमान इसमें उस ग्रहपिंड की आयु का लगता है, जिस पर हम रहते हैं।

अब तक जो स्थिति रही है, सो फॉसिल्स व प्राप्त अन्यान्य अवशेषों से ज्ञात होती रहती है। भविष्य के बारे में खगोलवेत्ताओं की गणना है कि कोई पाँच अरब वर्ष बाद अपनी पृथ्वी की स्थिति बड़ी विचित्र हो जाएगी। एक दिन ७२० घंटे का अर्थात आज के दिन की तुलना में ३० गुना बड़ा होने लगेगा। रात्रि अब के १५ दिनों के बराबर होगी और दिन भी इतना ही बड़ा होगा। इससे निश्चित ही हमारे अंदर की जैविक घड़ी पर प्रभाव पड़ेगा। एक और खगोल वैज्ञानिक के अनुसार यह समय कुछ भिन्न रूप में और भी जल्दी आ

सकता है। कम से कम मौसम परिवर्तन, ठंढी रातों के घंटों में वृद्धि एवं वातावरण में अन्यान्य परोक्ष परिवर्तनों से इसका एक पूर्वानुमान तो लगता है।

पृथ्वी का आदि–अंत कहाँ है? इस प्रश्न का उत्तर साधारणतया उसका व्यास ८००० मील बताकर अध्यापक लोग दे देते हैं पर यह तो केवल धरती की ठोस सीमा हुई। धरती का जीवन उसका वायुमंडल है। वायु न हो तो जीवन संचार ही संभव न हो। शब्द का बोलना, सुनना ही शक्य न रहे। बादल, वर्षा आदि की कोई व्यवस्था न बने। यह वायु भी धरती का वैसा ही अंग है जैसा कि ठोस पदार्थ, यह वायु का घेरा उसका अपना है।

हम सभी मनुष्य वातावरण के अदृश्य सागर के तले निवास करते हैं। प्रायः ९९ प्रतिशत वातावरण का भार ५ अरब टन है और वह सिर्फ ऊपर के ३० मील के क्षेत्र में सिमटा है। इस सघनता का लाभ यह है कि वह अंतरिक्षीय किरणों, उल्कापातों आदि घातक प्रभावों से पृथ्वी के जीवन की रक्षा करता है। साथ ही प्राणवायु, जल, रसायन आदि देता है। तापमान को नियंत्रित रखता है। इस तरह यह घनीभूत वातावरण अपनी पृथ्वी के लिए, हम सभी के लिए एक रक्षाकवच का काम करता है।

खोजी उपग्रहों ने वैज्ञानिकों को यह जानकारी दी है कि धरती के सात–आठ सौ किलोमीटर ऊपर एक विकिरण मंडल है। उस पर होने वाली अंतरिक्षीय प्रतिक्रिया के आधार पर यह जाना जाता है कि अंतरिक्ष के किस छोर पर क्या घटित हो रहा है व पृथ्वी पर क्या कुछ प्रभाव संभावित है।

पृथ्वी के वायुमंडल संबंधी जानकारी का विकास भी क्रमशः ही हुआ है। अब से सत्तर वर्ष पूर्व धरती का वायुमंडल सात–आठ मील की ऊँचाई तक माना जाता था। पीछे कहा जाने लगा कि वह १००–१५० मील है। वैज्ञानिक अनुसंधान आगे बढ़े और यह परिधि

२५०-३०० मील बताई जाने लगी। इसे आयनोस्फियर कहते हैं। इससे भी ऊँची लहराती, झूमती, घूमती, रंगीन ज्योतियाँ देखी गईं जिन्हें वैज्ञानिकों की भाषा में आरोकल लाइट्स 'मेरु ज्योतियाँ' कहा जाता है। इनका अस्तित्व वायुमंडल के बिना संभव नहीं। अस्तु, वायुमंडल की सीमा ७०० मील ऊँचाई तक मानी गई। इस प्रकार पृथ्वी की परिधि पहले की अपेक्षा अब और आगे खिसक गई।

रूस का प्रथम उपग्रह पृथ्वी के इर्द-गिर्द चक्कर काटने के लिए जब भेजा गया था तो अनुमान था कि ५००-६०० मील ऊँचाई पर हवा नाममात्र को होगी। उपग्रह को उससे कोई बाधा न पड़ेगी और वह ६ महीने अपना काम जारी रख सकेगा। पर वह अनुमान गलत निकला। इतनी ऊँचाई पर भी हवा का काफी दबाव था। उसकी रगड़ से यान की गति धीमी होती गई और उसे दो महीने में ही वापस लौटना पड़ा। लेकिन बाद में वैज्ञानिक प्रगति के विकास के साथ-साथ यान गुरुत्वाकर्षण की परिधि लांघकर अन्यान्य ग्रहों तक पहुँचने लगे। अब वैज्ञानिक यहीं से कम्प्यूटर द्वारा संचालित उपकरणों की मदद से उनकी दिशाधारा भी निर्धारित करते हैं व उनके माध्यम से अपने सौरमंडल के सुदूर कोनों की जानकारी भी प्राप्त कर लेते हैं।

अब तक प्राप्त जानकारियों के अनुसार अपनी पृथ्वी के धरातल से लगभग १००० मील ऊँचाई तक भारी-हलकी हवा का अस्तित्व है। इस ऊँचाई को चार भागों में विभक्त किया गया है—

(१) ट्रोपोस्फीयर (क्षोभमंडल) यह समुद्र सतह से ३५ हजार फुट तक है। समस्त वायु का लगभग तीन चौथाई वजन इसी क्षेत्र में है। हमारे जीवनोपयोगी तत्त्व का अधिकांश भाग इस क्षेत्र में भरा पड़ा है। आसानी से साँस ले सकना २० हजार फुट तक ही संभव है।

(२) स्ट्रेटोस्फीयर का क्षेत्र क्षोभमंडल की ३५ हजार फुट ऊँचाई पार करने के उपरांत आरंभ होता है जो धरती से ६५ मील की ऊँचाई तक चला जाता है। ४५ हजार फुट से ऊपर खुला शरीर नहीं जा

सकता। इसके लिए एयरकंडीशन जेट या बी-३६ किस्म का वायुयान चाहिए। यदि वहाँ कोई प्राणी खुला घूमे तो हवा का दबाव कम होने से उसकी नसें फट जाएँगी।

(३) ओजोनोस्फीयर (ओजोनमडंल) यह पृथ्वी से २०-२५ मील ऊँचाई पर है। यह विचित्र है। नीचे वाले आकाश की शून्य से ६७ डिगरी नीचे की ठंढ अचानक १७० डिगरी फारेनहाइट गरमी में परिवर्तित हो जाती है। यहाँ गाढ़ी ऑक्सीजन है जो सूर्य द्वारा फेंकी गई ब्रह्मांड किरणों और अल्ट्रावायलेट किरणों को रोककर अपने में आत्मसात कर लेती है। इसी किरणें सोखने की क्रिया के कारण ऑक्सीजन इतनी गरम हो जाती है कि चालीस मील ऊपर जाने पर कभी रात नहीं होती है।

(४) एक्सोस्फीयर—यह अंतिम आकाश अत्यंत भयावह है। यहाँ घोर अंधकार छाया रहता है। रंग-बिरंगी रोशनियों के तूफान उठते रहते हैं। कुछ दूरी तो शून्य से २८ डिगरी नीचे तक की ठंढ रहती है पीछे अकल्पनीय गरमी बढ़ जाती है। पानी खौलने की गरमी २१२ डिगरी फारेनहाइट होती है, पर यहाँ तो वह अंक ४००० डिगरी पर जा पहुँचा है। यह गरमी कल्पना शक्ति से बाहर की है। पृथ्वी के अयनमंडल की ऊपरी परत से सूर्य की ब्रह्मांड किरणों और अल्ट्रावायलेट किरणों के साथ घोर संघर्ष होता है।

उपग्रहों से प्राप्त जानकारी के अनुसार पृथ्वी की भूमध्य रेखा के चारों ओर दो मोटे-मोटे कवच हैं, मानों धरती ने अपनी कमर में दो मेखलाएँ पहन रखी हों। यह मेखला अथवा कवच वैज्ञानिकों की भाषा में प्लाज्मा द्वारा विनिर्मित हैं, जो पदार्थ की गैसीय स्थिति से भी विरल स्थिति मानी जाती है।

अब तक यही पढ़ा-सुना जाता रहा है कि पदार्थ तीन रूपों में पाया जाता है—(१) ठोस, (२) तरल, (३) वायव्य। पर अब यह चौथी वस्तु और सामने आई प्लाज्मा। यह वायु से भी विरल एक ऐसी

गैसीय स्थिति है जिसमें परमाणुओं का भी विघटन हो जाता है। पुराना अनुमान यह था कि आकाश सर्वथा शून्य एवं रिक्त है। पर अब यह स्पष्ट हो गया है कि वह क्षेत्र निस्तब्ध नहीं है। उसमें विद्युन्मय और चैतन्य तत्त्व भरे पड़े हैं। उसमें भी अपनी दुनिया की तरह ही हलचलों की भरमार है। समझना चाहिए कि इस शून्य आकाश-सागर में ही लहरें, ध्वनियाँ, उथल-पुथल, जीव-जंतु जैसे अपने ढंग के अतिरिक्त पदार्थों की भरमार है। न वहाँ निःस्पंदन है और न निश्चल स्थिति। पृथ्वी में एक दूसरे किस्म का वायुमंडल भी है, जिसे आकर्षण-चुंबकत्व अथवा ग्रेविटी के नाम से पुकारते हैं। यह चुंबकत्व 'प्लाज्मा' को प्रभावित करता है और उसकी प्रतिक्रिया लौटकर फिर पृथ्वी पर आती है। इस प्रकार का आदान-प्रदान और भी विस्तृत क्षेत्र पर अधिकार जमाता है। इस चुंबकीय प्रत्यावर्तन को संपन्न करने वाला वायुमंडल की तरह का ही एक चुंबक मंडल भी है। यह भी पृथ्वी का ही विस्तृत अधिकार क्षेत्र है।

इन मेखला कवचों की प्रधान भूमिका यह है कि ये गामा एवं कॉस्मिक किरणों के प्रभावों से पृथ्वी को बचाती हैं। सूर्य केंद्र के निकट जहाँ तापमान २ करोड़ ७० लाख डिगरी फारेनहाइट तथा घनत्व १५० ग्राम प्रति क्यूबिक सेंटीमीटर होता है, अनवरत तेज बना रहता है। प्रोटॉन अपने इलेक्ट्रॉन से नग्नीकृत होकर २५० मील प्रति सेकंड की रफ्तार से गतिशील होते हैं तथा हीलियम के निर्माण हेतु संलग्न हो जाते हैं। इस प्रक्रिया को ४ सोकाफ 'थर्मोन्यूक्लीयर फ्यूजन' कहते हैं जिससे प्रति सेकंड ५६ करोड़ ४५ लाख टन हाइड्रोजन (प्रोटॉन) ५६ करोड़ टन हिलियम में फ्यूज हो जाती है। अतः ४५ लाख टन मात्रा की क्षति सूर्य द्वारा निस्सृत होती है, जिसका रूपांतरण अत्यंत विनाशकारी उर्जायुक्त गामा किरणों के रूप में होता है। सौभाग्यवश ये गामा किरणें हम तक पहुँच नहीं पातीं क्योंकि हमारी पृथ्वी के कवच इन्हें रोक लेते हैं।

पृथ्वी के चारों ओर तीस मील तक फैला हुआ सघन वायुमंडल, सूर्य के अल्ट्रावायलेट किरणों का विकिरण, व्यूहाणुओं से संबद्ध गैस क्षेत्र, दृश्यमान प्रकाश, अदृश्य ब्रह्मांड किरणें, रेडियो तरंगें, चुंबकीय परतें, लोकांतरों से आने वाला प्रभाव आदि अनेक तथ्य ऐसे हैं जो खुली आँखों से दीख नहीं पड़ते फिर भी वे अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। उनका अपनी धरती के साथ अविच्छिन्न संबंध है। मोटेतौर से ऋतु प्रभाव के साथ धरती के साथ जुड़े हुए अंतरिक्ष संबंध से ही हम परिचित हैं, पर जो इससे आगे की—अनदेखी बातें हैं वे और भी अधिक प्रभावशाली हैं। दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिए कि भूगर्भ में जो कुछ है उससे असंख्य गुना पदार्थ और प्रभाव अंतरिक्ष में भरा पड़ा है। उससे अपरिचित रहे तो हमें अज्ञानियों की संज्ञा में ही गिना जाएगा।

अंतरिक्ष जो पृथ्वी को चारों ओर से घेरे है में कॉस्मिक किरणों का बाहुल्य है। इस विशाल महासागर से समस्त दिशाओं से आने वाली कॉस्मिक किरणें प्रकाश किरणों की गति से निरंतर पृथ्वी पर बरसती रहती हैं। मनुष्य द्वारा विनिर्मित सर्वोच्च ऊर्जा कणों की तुलना में प्रकृति द्वारा बौछार किए जाने वाली कॉस्मिक किरणें अरबों गुना शक्तिशाली एवं वेधक होती हैं। कॉस्मिक किरणों का जीव-जगत पर बहुत ही व्यापक एवं घातक प्रभाव पड़ता है। ये किरणें जीवित प्राणियों के शरीर में प्रवेश करके काय कोशिकाओं को नष्ट करने की सामर्थ्य रखती हैं। उच्च ऊर्जा, कॉस्मिक किरणें तथा कुछ सेकंडरी 'शोवर्स' मनुष्य शरीर में प्रवेश कर प्रतिदिन सैकड़ों कोशिकाओं को मृतक बना देती हैं। ऊतक कोशिकाएँ कॉस्मिक किरणों की बौछार से मरने के बाद नई कोशिकाओं द्वारा प्रतिस्थापित कर दी जाती हैं। किंतु ब्रेन सेल्स-मस्तिष्क कोशिकाएँ कभी भी द्विगुणीकृत नहीं होतीं। कॉस्मिक किरणों के प्रभाव से प्रतिदिन लगभग १०० की संख्या में ब्रेन सेल्स मरती-नष्ट होती हैं और मृतक दशा में ही मस्तिष्क में बनी रहती हैं। इनका बदलाव कभी भी नहीं होता। जब तक पाठकगण इस पृष्ठ को

पढ़ रहे होंगे तब तक उच्च बेधक कॉस्मिक किरणों के प्रभाव से उनके मस्तिष्क की कुछ कोशिकाएँ मर चुकी होंगी। इस पर भी चिंतित होने की आवश्यकता नहीं क्योंकि मानव मस्तिष्क में १२ अरब ब्रेन सेल्स विद्यमान हैं जो सतत बनते रहते हैं।

कॉस्मिक किरणों की खोज सन् १९०८ में विक्टर हेस ने की थी। ये किरणें दो तरह की होती हैं—प्राइमरी कॉस्मिक किरणें तथा सेकंडरी कॉस्मिक किरणें या 'शोवर्स'। प्राइमरी कॉस्मिक किरणों की ऊर्जा रेंज १०६-१०२ इलेक्ट्रॉन वोल्ट होती है। पृथ्वी के ऊपरी एडमॉस्फियर के प्रतिघन मीटर क्षेत्र में प्रतिमिनट औसतन १०००० प्राइमरी कॉस्मिक किरणें टकराती हैं। ५० से ६० किलोमीटर ऊपर से आने वाले प्रोटॉन्स अल्फा किरणों की भिड़ंत वातावरण में फैले नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और कार्बन परमाणुओं से होती है। संघर्ष के कारण नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बन और गामा किरणों के परमाणु टूटकर उच्चगति वाले द्रुतगामी आइसोटोप्स बनाते हैं जो बाद में लोअर एडमास्फियर में बिखरे अन्य परमाणुओं से टकराकर द्रुतगामी 'शोवर्स' का निर्माण करते हैं जिन्हें सेकंडरी कॉस्मिक किरणें कहा जाता है। ये किरणें पृथ्वी की सतह तक पहुँचती हैं। १०१८ इलेक्ट्रॉनिक वोल्ट वाली द्रुतगामी कॉस्मिक किरणें पृथ्वी की सतह तक पहुँचने के पूर्व ही उच्च शिखरों, शैल खंडों द्वारा रोक ली जाती हैं। विभिन्न रॉक सैंपुल्स तथा मीटियोरिटिक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि कॉस्मिक किरणों की शक्ति लाखों वर्षों से स्थिर बनी हुई है।

कॉस्मिक किरणों के अनेक उद्गम-स्रोत हैं। सोलर कॉस्मिक किरणें सौर्य विस्फोट सोलर फ्लेपर के समय निकलती हैं और अपेक्षाकृत कम ऊर्जा वाली होती हैं। गैलेक्टिक कॉस्मिक किरणें अंतरिक्ष में समस्त दिशाओं से आती हैं। इनका उद्गम-स्रोत आकाशगंगा-मिल्की वे गैलेक्सी तथा एक्स्ट्रा गैलेक्टिक माना जाता है। धधकते तारे, तेजी से चक्कर लगा रहे न्यूट्रॉन, स्टार्स और सुपर नोवा भी कॉस्मिक किरणों के उद्गम-स्थल माने जाते हैं। ब्रह्मांड के किनारे पर स्थित

रहस्यमय क्वासार्स को उच्च ऊर्जा युक्त कॉस्मिक किरणों का स्रोत समझा जाता है।

इन अनुदानों को वांछित मात्रा में ग्रहण करने, न करने के अतिरिक्त पृथ्वी का एक कार्य निरंतर गतिशील रहना भी है। मनुष्य भले ही निश्चेष्ट बैठे—भले ही उदास, निराश दिखाई पड़े पर धरती उछलती, कूदती, नाचती, थिरकती अपनी मोद-विनोद भरी जीवन यात्रा पर अनवरत गति से चलती चली आ रही है। हम साधारणतया इतना ही समझते हैं कि पृथ्वी सूर्य का चक्कर काटती है और अपनी धुरी पर घूमती है। पर उसकी चाल में नृत्य जैसी थिरकन भी शामिल है, इसे अभी-अभी ही जाना गया है।

पृथ्वी की गतियों में एक है—भूमंडलीय डगमगाती गति। सूर्य और चंद्रमा के गुरुत्वाकर्षणीय खिंचाव से पृथ्वी का भूमध्यरेखीय उभार तथा पृथ्वी की धुरी सदा एक ही दिशा में नहीं घूमते। ऊपर से पर्यावलोकन किया जाए तो पृथ्वी की धुरी अंतरिक्ष में एक वृत बनाती हुई चलती है, जिसका पूरा चक्र २५ हजार ८०० वर्षों में पूरा होता है। जबकि किनारे से देखने पर एक दैत्याकार घूर्णिका के रूप में जो आगे-पीछे डगमगाती हुई दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार पृथ्वी के विभिन्न भाग इतिहास में विभिन्न समय पर निकट आते और दूर हटते रहे हैं।

दूसरे प्रकार की गति में पृथ्वी की धुरी झुकी हुई रहती है। धुरी से बना कोण तथा पृथ्वी की कक्षा की सतह अंडाकार रूप में जुड़े रहते हैं। इस तरह की गति का चक्र ४१ हजार वर्षों में पूरा होता है। किनारे से देखने पर पृथ्वी की परिधि झूलती हुई जान पड़ती है। दो चरम छोरों में मात्र ३ डिगरी का अंतर होता है, पर यह अंतर सूर्य ऊर्जा की मात्रा को भूभागों पर पहुँचने में परिवर्तन ला देता है।

तीसरी गति पृथ्वी की कक्षा की बनावट से संबंधित है। प्रत्येक एक लाख वर्ष के भीतर पृथ्वी की कक्षा अंडाकार से वृत्ताकार के रूप में तथा पुनः वृत्ताकार से अंडाकार के रूप में, दूसरे ग्रहों के गुरुत्वाकर्षणीय

खिंचाव से बदलती रहती है। अपने ग्रह से निकटतम तथा अधिकतम दूरी सूर्य की वर्तमान में ३० लाख मील आँकी गई है, पर भूतकाल में वह अधिक थी।

इस खगोलीय सिद्धांत के आविष्कारक भू-खगोलविद् मिलांकोविच ने गणना की है कि उपरोक्त तीनों गतियों के सम्मिलित प्रभाव से सौर ऊर्जा के भूमंडल पर वितरण में अंतर आता रहता है। प्रकृति का जो भूभाग कम सूर्य प्रकाश प्राप्त करता है, वहाँ हिमयुग की शुरुआत पहले होती है।

पर्यवेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि लगभग प्रत्येक १४ महीनों के अंतराल पर पृथ्वी का कक्ष परिवर्तित हो जाता है। यह परिवर्तन किसी भी दिशा में १६ से ३३ फीट तक होता है। वैज्ञानिक इस बात से आश्चर्यचकित हैं कि पृथ्वी कोई ठोस पिंड मात्र नहीं, वरन चेतना का समुच्चय है।

पृथ्वी अपने अधिष्ठाता के निर्देशों पर चलने वाली स्रष्टा की आज्ञाकारी संरचना है। वैज्ञानिकों का मत है कि सूर्य ठंढा हो रहा है। उसके फलस्वरूप पृथ्वी भी ठंढी हो रही है। साथ ही उसकी सक्रियता भी घट रही है। अब से एक करोड़ वर्ष पहले दिन-रात २२ घंटे के होते थे और वर्ष ४०० दिन का था। अब वर्ष में प्राय: ४० दिन की कमी और दिनमान में २ घंटे की बढ़ती हो गई है। इसका कारण यह है कि वह अपनी धुरी पर भी अपेक्षाकृत मंदगति से घूमने लगी है और सूर्य की परिक्रमा करने वाली यात्रा में भी धीमापन आया है।

पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण शक्ति विद्यमान है, फलस्वरूप अपनी कक्षा में प्रभाव सामर्थ्य की परिधि में रहने तक वह पदार्थों को अपनी ओर सतत आकर्षित करती रहती है वस्तुत: इस ब्रह्मांड की रचना इस प्रकार हुई है कि उसकी पोल में हर वस्तु अधर में लटकी रहती है। गिरने की बात तो तब बनती है, जब उस पर कोई दबाव पड़ता है और बलपूर्वक अपनी ओर खींचता है। यदि दबाव न पड़े तो वह पोले आकाश में अपनी जगह अनंत काल तक बनी रहेगी।

पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है, इसलिए वह अपने प्रभावक्षेत्र में दूसरी वस्तुओं को अपनी ओर खींचती है। इसी खिंचाव से प्रेरित होकर चीजें ऊपर से नीचे गिरती हैं। वजन क्या है ? वजन उस शक्ति का नाम है, जो अमुक वस्तु को पृथ्वी की ओर खिंचने से रोकने के लिए लगानी पड़ती है। दूसरे शब्दों में पदार्थ पर पड़ने वाले पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के दबाव को वजन कहते हैं।

हम मंगल ग्रह की ओर उड़ें तो जब तक पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से लड़ते हुए आगे चलेंगे, तब तक सोचेंगे कि ऊपर उठ रहे हैं। जब मंगल की आकर्षण शक्ति के क्षेत्र में प्रवेश करेंगे तो प्रतीत होगा कि गिरना आरंभ हो गया। खिंचाव का दबाव जितना बढ़ता जाएगा उसी अनुपात से गिरने की गति बढ़ती जाएगी। इस प्रकार से गुरुत्वाकर्षण भी एक सापेक्ष स्थिति में सक्रिय होने वाला बल प्रतीत होता है। न्यूटन द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धांत एक सीमा तक सही है। यदि कोई अंतरिक्षीय यान प्रकाश की गति से भी तेज एक सेकंड में ३ लाख किलोमीटर से अधिक उड़ने लगे तो गुरुत्वाकर्षण के नियम गलत हो जाएँगे।

गत दशाब्दी में अणु भौतिकी यहाँ तक पहुँच गई है कि यह विश्व-वसुधा एक अनोखी दृष्टि से देखी जाने लगी है। इनका केंद्र बिंदु प्रकृति को विभिन्न प्राकृतिक सत्ताओं (कॉस्मिक फोर्स) का दिव्य एकीकरण है। इन लोगों को आशा है कि विश्व-ब्रह्मांड के विविध क्रिया-कलापों के पीछे कोई एक ही सूत्र (फोर्स) काम कर रहा है। इस ज्ञान क्षेत्र को 'यूनीफाइड फील थियरी' या 'लोकल गेज थियरी' का नाम दिया गया है, जिसकी मूलभूत मान्यताएँ अतीव सरल हैं, जिन्हें दैनंदिन जीवन के अनुभवों के आधार पर समझा जा सकता है।

वर्ष १९६० तक वैज्ञानिकों ने कॉस्मिक फोर्स को चार भागों में विभाजित किया था। जिसमें से दो को गुरुत्वाकर्षण तथा विद्युतचुंबकत्व कहा गया, जिनसे सर्वसाधारण सुपरिचित हैं। गुरुत्वाकर्षण तो एक ऐसा अदृश्य बल है, जो पृथ्वी को लाखों मील की दूरी से सूर्य की

परिक्रमा करने को बाध्य करता है। दूसरा बल इलेक्ट्रोमैगनेटिज्म कुछ फीट की दूरी मात्र से ही खींच सकता है। २०वीं शताब्दी में २ प्रकार के और प्रकृति बल की जानकारी विश्व को मिली। इसमें एक प्रबल तथा दूसरा दुर्बल हुआ करता है—इन दोनों का अनुभव सब ऐटॉमिक स्थिति में ही होता है जो इंद्रियगोचर नहीं है, मात्र प्रतिक्रिया ही देखी जा सकती है। इन दोनों में प्रबल है ऐटॉमिक फोर्स जो ऐटम के विभिन्न कणों को केंद्र की ओर आकर्षित किए रहा करता है। इसी बल के कारण ही सृष्टि के विभिन्न पदार्थ यथावत लंबे समय तक बने रहते हैं।

चौथे मंद बल को रेडियोएक्टिव ऊर्जा क्षरण के रूप में जाना जाता है। उक्त चारों फोर्स के अतिरिक्त और किसी फोर्स की जानकारी विश्व को अभी तक नहीं हो पाई है। यह भी अपने आप में एक विचित्रता ही है कि इस विशाल संसार में मात्र ४ ही सत्ताएँ हैं किंतु अणुविज्ञानी इससे संतुष्ट नहीं हैं क्योंकि उन्हें इन सबमें संबंध स्थापित रखने के लिए ४ प्रकार के विभिन्न सिद्धांत बनाने पड़ते हैं।

न्यूटन से पूर्व चाँद को चलाने वाला एक बल और पृथ्वी पर फल खींचकर गिराने वाला एक दूसरी प्रकार का बल था। ऐसी उन दिनों की मान्यता थी। बाहर से दिखने में इस विभिन्नता को सरलीकृत करके न्यूटन ने प्रतिपादित किया कि यह दोनों एक ही बल गुरुत्वाकर्षण हैं। यह बात तो ३०० वर्ष पुरानी है किंतु अभी विगत शताब्दी तक चुंबकत्व तथा विद्युत दो भिन्न-भिन्न फोर्स माने जाते थे। विज्ञान ने इन दोनों फोर्स में एकता स्थापित की जिसे 'गेज थियरी' कहा जाता है।

चारों कॉस्मिक फोर्स के बलों में आपसी अनुपात बिठाने के लिए एक उदाहरण—यदि अणु अपने परमाणुओं को जिस शक्ति अनुपात में खींच रहा है, इसको इकाई मान ली जाए तो विद्युतचुंबकीय बल को १/१३७ का कहा जा सकता है। रेडियोधर्मी विकिरण बल

को ०.००००१ कहा जाएगा तथा गुरुत्वाकर्षण बल को १० के पीछे ३८ शून्य लगाना पड़ेगा, वह इतना गुना है।

नोबुल पुरस्कार विजेता अब्दुल सल्लाम ने अपने शोधपत्र में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यानाकर्षण किया है कि उक्त चारों बल एक ही इकाई की ओर इशारा करते हैं। सन् १९७९ में सल्लाम के साथ नोबुल पुरस्कार के सहभागी वेइन वर्ग तथा शेलन ग्लाशो (हरवार्ड) भी थे। इन विजेताओं ने सृष्टि के सभी पदार्थों को चार प्रकार की ऊर्जा शक्ति जो विश्व को गतिशील रखती है, इनकी इकाइयाँ तथा भौतिक क्रिया-कलाप का वर्णन यों किया है—

गुरुत्वाकर्षण की इकाई ग्रैविटोन्स है तथा इसका विस्तार अनंत है और इसका सामूहिक व्यावहारिक दृश्य स्वरूप सूर्यमाला है। इसकी क्रिया-कलाप उल्कापात है।

इलेक्ट्रोमैगनेटिज्म की इकाई फोटॉन का विस्तार अनंत तथा दृश्य स्वरूप पहाड़ों से लेकर जीवकोशों का द्रव्य (मैटर) क्रिया-कलाप है रासायनिक प्रतिक्रिया।

प्रवल मोलेक्युलर फोर्स की इकाई ग्लुआन्स, विस्तार १/१० बारह सूत्र से. मी. दृश्य स्वरूप ऐटम क्रिया-कलापः न्यूक्लीयरएक्शन मंद मोलेम्पुलर फोर्स की इकाई वेक्टर वोसान्स, विस्तार १/१ पंद्रह शून्य से. मी. क्रिया-कलाप रेडियो विकिरण।

इतना ही नहीं, इन नोबुल पुरस्कार विजेताओं ने विकिरण जन्य मोलेकपुलर फोर्स तथा इलेक्ट्रोमैगनेटिज्म बलों को एक ही महत बल बताया है जो एक अभूतपूर्व सिद्धांत है। अब कभी तीनों में भी एकता स्थापन के लिए विभिन्न वैज्ञानिक भिन्न-भिन्न सिद्धांत पेश कर रहे हैं, जो ब्राह्मी चेतना को प्रमाणित करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम होगा।

धरती की विशिष्ट क्षमताओं में एक है—उसकी चुंबकत्व शक्ति। यह सर्वविदित गुरुत्वाकर्षण से सर्वथा भिन्न है। पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण उसके भीतर नहीं बाहर दीखता है और पकड़े-जकड़े रहने के काम

आता है। जबकि चुंबकत्व शक्ति को धरती का प्राण कहा जा सकता है और वह गुरुत्वाकर्षण की अपेक्षा कही अधिक व्यापक क्षेत्र में फैला हुआ है। धरती की प्रकट और गर्भस्थ संपदा को इसी विशिष्ट क्षमता का प्रतिफल कहा जा सकता है।

चुंबकीय क्षेत्र अविज्ञात कारणों से स्थान भी बदलते रहते हैं और उफनते तथा ठंढे भी होते रहते हैं। इन उलट-फेरों का धरती के वातावरण पर असाधारण प्रभाव पड़ता है और उससे पदार्थों तथा प्राणियों की स्थिति में भारी परिवर्तन होने लगता है।

पर्यवेक्षणों से पता चला है कि आदिकाल से लेकर अब तक के इतिहास में कई बार भू-चुंबकीय बल ने पलटा खाया है। फलतः परिस्थितियों में भारी उथल-पुथल हुई है। उन प्रभावों से प्रभावित होकर अनेकों जीव-जातियाँ विलुप्त हो गईं।

जब भी चुंबक बल घटता है, तब अंतरिक्षीय आदान-प्रदानों से संतुलन गड़बड़ा जाता है और ब्रह्मांडीय किरणों को घातक बौछारों से मौसम बदलने से लेकर जीवधारियों के शरीरों तथा मनों का स्वाभाविक क्रम बेतरह गड़बड़ाने लगता है।

प्रयोगशाला में चुंबकीय क्षेत्र घटाकर उसका परिणाम प्राणियों पर देखा गया तो प्रतीत हुआ कि उनका पाचनतंत्र, रक्त-संचार, निद्रा जागरण ही नहीं, ज्ञान अभ्यास एवं स्वभाव भी बेतरह उलट गया। बाल झड़ने लगे, प्रजनन रुक गया और वह दुर्बल होकर अकाल मृत्यु के ग्रास बन गए।

देखा गया है कि इन दिनों पृथ्वी का भू-चुंबकत्व तेजी से कम हो रहा है। कुछ शताब्दियों पूर्व की अपेक्षा इन दिनों उसमें भारी कमी आई है। आशंका की जा रही है कि घटोत्तरी इसी प्रकार चलती रही तो अगले दिनों स्थिति भयंकर हो जाएगी और उसके महाविनाशकारी परिणाम होंगे। वह समय अभी दूर है और संभवतः विधाता को इस ग्रह का अस्तित्व पसंद आता हो। ऐसी स्थिति में परिस्थितियाँ बदल भी सकती हैं।

पृथ्वी की इन सबके अतिरिक्त एक और विशिष्टता है—इसका भूगर्भीय केंद्र। पृथ्वी गर्भ में २५ मील गहरे उतरने पर इतनी गरमी है कि उसमें पत्थर भी पिघल जाए। वहाँ सब कुछ पिघले हुए लोहे की तरह द्रव रूप में है। अपने जन्मकाल में पृथ्वी भी सूर्य की तरह आग का गोला थी। वह क्रमशः ठंढी होती गई। ऊपर की परतें इतनी ठंढी हो गई कि उस पर वनस्पतियों और प्राणियों का जीवन संभव हो सके, किंतु भीतर की आग अभी भी बहुत गरम है। ठंढक जैसे-जैसे भीतर घुसती जाती है, वैसे गरम परतों का विस्तार सिकुड़ता है और वहाँ उत्पन्न होने वाली भाप परतें फोड़कर ऊपर निकलने का प्रयास करती है। इसी विस्फोट को ज्वालामुखियों के रूप में देखा और भूकंपों के रूप में अनुभव किया जाता है।

पृथ्वी का मध्य केंद्र बाह्य धरातल से ६४३५ किलोमीटर है। पर उसके भीतर की स्थिति जानने में अभी प्रायः २८०० मीटर तक का ही पता चलाया जा सका है। ६२ मील की गहराई पर तापमान ३००० अंश शतांश होता है। इस तापमान पर किसी पदार्थ का ठोस अवस्था में रहना संभव नहीं, अस्तु यह निर्धारित किया गया है कि ६२वें मील से लेकर ३९६० मील पर अवस्थित भूगर्भ केंद्र तक का सारा पदार्थ पिघली हुई स्थिति में होगा। समय-समय पर फूटने वाले ज्वालामुखी और भूकंप इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं।

पृथ्वी के भीतरी परतों में गरमी भी अधिक है और भारीपन का दबाव भी बढ़ा-चढ़ा है। अतएव वहाँ किसी सुंदर और सुव्यवस्थित वस्तु का अस्तित्व नहीं बन पाता। सब कुछ आग्नेय द्रव के रूप में है। भूकंपों द्वारा समय-समय पर पृथ्वी की आंतरिक स्थिति का परिचय भी मिलता रहता है।

अब तक पृथ्वी को अधिक से अधिक ५ मील तक ही खोदा जा सका है, जब कि पृथ्वी के मध्य केंद्र की गहराई लगभग ४ हजार मील है। अधिक गहराई में क्या है—इसकी यत्किंचित जानकारी भूकंपों के समय निकलने वाली भूगर्भीय तरंगों से ही प्राप्त होती है।

ये भूगर्भीय तरंगें वस्तुतः प्रकृति की एक गुप्त पावरलाइन की ओर संकेत करती हैं जो भूगर्भीय केंद्र में सतत गतिशील रहती हैं। कारण इनका भी सूर्य से निस्सृत आवेशित कण हैं जो पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र में हलचल पैदा कर भूगर्भ तक कंपन्न की लहर उत्पन्न कर देते हैं।

वाशिंगटन विश्वविद्यालय के भू-भौतिकीविद् जॉन. आर. बोकट को अमेरिकी पश्चिमी समुद्री तट की बनावट अध्ययन करते समय कुछ महत्त्वपूर्ण खोज हाथ लगी। उन्होंने पाया कि भूगर्भ स्थित चट्टानें विद्युतधारा की अच्छी सुचालक हैं। यह एक संयोग ही था। इस विद्युतधारा का एवं भूकंपों के कंपनों का पथ एक ही था। सूर्य द्वारा प्रभावित भू-चुंबकीय क्षेत्र में उत्पन्न इस विद्युतधारा के पथ का मान चित्रण कर पृथ्वी के अंदर क्या कुछ घट रहा है या घटने जा रहा है? इसकी जानकारी अब हासिल की जा सकती है। यहाँ तक कि संभावित भूकंपों का पूर्वानुमान वर्षों पूर्व लगाकर ब्रह्मांड भौतिकी एवं भूभौतिकी के समन्वय से काफी कुछ क्षति बचा सकना भी संभव है।

पृथ्वी के भीतरी भाग में दबाव बहुत अधिक है। जहाँ धरती का तरल भाग समाप्त होकर कड़ा आवरण शुरू होता है, वहाँ का दबाव प्रायः प्रति वर्ग इंच पर लगभग १० हजार टन है।

यों अहंकारी स्थूल दृष्टि भारी-भरकमपन और उष्णता उग्रता को ही महत्त्व देगी, पर पृथ्वी की स्थिति ने स्पष्ट कर दिया है कि उसके भीतरी अंतराल में जहाँ गरमी और दबाव का बाहुल्य है, वहाँ केवल दाह की भट्ठी ही जल रही है और उस विक्षोभ की उसासें भूकंपों और ज्वालामुखियों के रूप में फूटकर शांत वातावरण को विषाक्त और विकृत ही करती रहती हैं। इसके विपरीत धरती के ऊपरी वायुमंडल में जहाँ हलकेपन और शीतलता का संतुलन है, वहाँ जीवन, सौंदर्य और सुविधा-साधनों के पनपने का अवसर मिला है।

पृथ्वी अपने अंदर निहित ऊष्मा को जब विवर या दरारों के माध्यम से बाहर निकालती है तो उसे ज्वालामुखी नाम से जाना जाता

है। इस विस्फोट के फलस्वरूप बड़े-बड़े पठार या पहाड़ों का निर्माण होता है। कभी-कभी इन ज्वालामुखियों से बहुमूल्य खनिज संपदाएँ भी हाथ लग जाती हैं।

वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी की ऊपरी सतह ४०-५० मील तक की गहराई में ही ठोस पदार्थ होने का अनुमान है। उसके बाद लगभग ३९०० मील के व्यास में पृथ्वी का अंतराल द्रव या गैस के ही रूप में हो सकता है। यह क्षेत्र इतना तीव्र उष्मांक वाला है कि इसके अंदर गैस के अलावा पदार्थों का अन्य स्वरूप संभव ही नहीं है। इस गैस को वैज्ञानिकों ने 'मैगमा' नाम दिया है।

धरातल के अंदर की ऊष्मा का अनुमान मात्र इसी से लगाया जा सकता है कि प्रति १०० फुट की गहराई पर औसतन १ सेंटीग्रेड ताप बढ़ता जाता है। ९९ डिगरी सेंटीग्रेड पर पानी उबलने की स्थिति बन जाती है। इसी अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि ४०-५० मील की गहराई के बाद चट्टानें तो होंगी नहीं। कुछ गहराई तक द्रव्य हों भी तो गैस की ही संभावनाएँ शेष बचती हैं।

धरातल के नीचे की उष्मा, जहाँ पर भी धरातल का तल पतला या कमजोर पाया उसे बेधकर उसकी गैस बाहर उबल पड़ती है। यह गैस हाइड्रोजन, गंधक, कार्बन, ऑक्सीजन आदि रूप में बाहर प्रकट होती है। इससे निकलने वाला धुएँ का गुब्बारा हजारों फीट ऊँचाई तक अंतरिक्ष को आच्छादित कर लेता है। फलस्वरूप गैसें जब शक्तिशाली दबाव के साथ बाहर निकलती हैं तो हजारों फुट मोटी तह वाली चट्टानों को बेधती हुई गरम लावे से बाहर आती हैं। इससे कभी-कभी दूर-दूर तक भूचाल भी आते हैं। जापान के एक ज्वालामुखी से गंधक के अतिरिक्त एक अति महत्त्वपूर्ण खनिज संपदा हाथ लगी है।

भारतवर्ष में दक्षिणी पठार जहाँ पर आजकल कपास की सबसे अच्छी उपज होती है, ज्वालामुखी की ही देन है। इसका क्षेत्रफल लगभग २ लाख वर्गमील है। प्रशांत महासागर के अंतराल में ज्वालामुखियों का एक विशाल भंडार सा है। इसके उदर में विकसित द्वीप समूह

ज्वालामुखियों की ही देन हैं। आज भी सैकड़ों की संख्या में पर्वतों की एक शृंखला प्रशांत महासागर के गर्भ में छिपी है जो ऊपर आने की प्रतीक्षा में हैं। कभी भी क्रुद्ध प्रकृति अपने अंतरतम की ज्वाला से इस पृथ्वी में उलटफेर कर कहीं झील, कहीं सागर बनाकर नई सृष्टि कर सकती है।

चाहे पृथ्वी के वायुमंडल की चर्चा की जाए अथवा ध्रुवों की स्वयं की हलचल की अथवा भूगर्भीय गतिविधियों की, स्रष्टा की इस अद्‌भुत संरचना पर आश्चर्य भी होता है एवं गर्व भी। सब कुछ यहाँ संतुलित एवं व्यवस्थित है। कहीं कोई व्यतिक्रम नहीं। जहाँ भी मनुष्य ने छेड़खानी की है, उसे दंड प्रकोपों के रूप में भुगतना पड़ा है। अपनी इस पृथ्वी पर जीवन होना व उन सारी परिस्थितियों का होना जिससे सुख-शांति से आयुष्य गुजारी जा सके एक विशिष्ट अनुदान माना जाना चाहिए एवं हर पल का हर कीमत पर सदुपयोग किया जाना चाहिए।

गति एवं परिवर्तन : एक सनातन प्रक्रिया

"परिवर्तन के अतिरिक्त संसार में कुछ भी शाश्वत नहीं है।" किसी विचारक के इस कथन की सत्यता को सर्वत्र परखा जा सकता है। हर क्षण संसार बदल रहा है, स्थिरता कहीं भी नहीं है। जिन्हें हम स्थिर मानते हैं, वे भी तीव्र गति से हलचल कर रहे हैं। नेत्रों का भ्रम उस गति को देखने में अवरोध खड़ा करता है। पैरों के नीचे पड़े मिट्टी के कण गतिहीन प्रतीत होते हैं, पर उनके सूक्ष्मतम घटकों को देखा जा सके तो प्रतीत होगा कि उनमें भी अत्यंत तीव्र हलचल हो रही है। गति से रहित शरीर के आंतरिक संस्थानों के क्रिया-कलाप कभी रुकते नहीं। हर क्षण लाखों कोशिकाएँ मरतीं तथा लाखों नई पैदा होकर उनका स्थान ले लेती हैं, प्रत्यक्ष नेत्रों को यह कहाँ दिखाई पड़ता है। गति एवं परिवर्तनों का मात्र स्थूल पक्ष ही नेत्रों को दिखाई पड़ता अथवा अनुभव में आता है। अधिक सूक्ष्म परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होते। पर इससे उस सचाई पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता कि सृष्टि

के हर छोटे-बड़े घटक गतिशील हैं तथा उनमें निरंतर परिवर्तन हो रहे हैं।

वस्तुतः सृष्टि में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है। सब गतिशील हैं। जड़-चेतन सभी गतिवान हैं। जिन्हें हम स्थिर और जड़ मानते हैं, उनके भीतर भी स्थिरता नहीं है। विद्यमान अणु और परमाणु एक निर्धारित कक्षा एवं गति वेग से परिभ्रमण कर रहे हैं। चंद्रमा पृथ्वी की और पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा कर रही है। सूर्य अपने सौरमंडल के सदस्यों सहित महासूर्य अतिसूर्य की परिक्रमा करने दौड़ा चला जा रहा है। इस क्रम का अंत नहीं है। लगती तो पृथ्वी भी स्थिर ही है पर वस्तुतः वह प्रचंड वेग से अपनी ही कक्षा पर सूर्य के चारों ओर घूम रही है।

स्थिरता भीतर भी नहीं है। शरीर के भीतरी अवयव एक स्वसंचालित प्रक्रिया द्वारा अपने-अपने कार्यों में मुस्तैदी से जुटे हैं। हृदय का आकुंचन-प्रकुंचन सदा चलता रहता है। रक्त नलिकाओं में रक्त का प्रवाह सदा जारी है। पाचनतंत्र खाद्य पदार्थों को पचाने, ऊर्जा में परिवर्तित करने में लगा रहता है। इसमें थोड़ा भी व्यतिक्रम होने पर विभिन्न प्रकार की विकृतियाँ रोगों के रूप में उठ खड़ी होती हैं। फेंफड़े अपना कार्य करते हैं श्वास तंत्र अपना। बाहर से देखने पर तो सब शांत एवं स्थिर मालूम पड़ता है, पर जीवशास्त्री जानते हैं कि भीतरी अवयव यदि विश्राम करने लगें, अपना काम करना बंद कर दें तो शरीर को जीवित रखना मुश्किल ही नहीं असंभव हो जाएगा।

स्थिरता जड़ समझी जाने वाली वस्तुओं में भी नहीं है। वस्तुओं के परमाणु के भीतर प्रचंड वेग से हलचल हो रही है। इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन आदि कण केंद्रक के भीतर-बाहर तीव्रगति से निश्चित कक्षा में दौड़े चले जा रहे हैं। उनमें से एक भी बागी होकर अपना काम बंद कर दे तो पदार्थ सत्ता का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाए। पिंड हो या ब्रह्मांड, जड़ हो या चेतन हलचल सबमें हो रही है गतिशील सभी हैं। हमारी

पृथ्वी जैसी हमें आज दिखाई देती है कभी ऐसी न थी। सतत परिवर्तन की परिणति स्वरूप ही इसका वर्तमान स्वरूप बना है।

प्राप्त शिलालेखों एवं पुस्तकों के आधार पर इतिहासवेत्ताओं ने गवेषणा की है कि पृथ्वी पर सामाजिक एवं राजनीतिक इतिहास का आरंभ ५ से लेकर १० हजार वर्ष पूर्व हुआ था। जबकि पृथ्वी की परतों के नीचे प्राणियों एवं वनस्पतियों के अश्मीभूत अवशेषों (फॉसिल्स) से प्राप्त जानकारी के अनुसार पृथ्वी का इतिहास ५२ करोड़ वर्ष पूर्व से प्रारंभ हुआ। हिमालय से प्राप्त वनस्पतियों एवं प्राणियों के अवशेष यह बताते हैं कि यह सारा प्रदेश पहले समुद्र में डूबा हुआ था अर्थात आज जहाँ हिमालय के विशालकाय शिखर एवं चोटियाँ दिखाई पड़ रहे हैं, संभवतः वहाँ समुद्र रहा होगा। भू-गर्भ विशेषज्ञों का कहना है कि दो टापुओं को छोड़कर संपूर्ण यूरोप खंड समुद्र से आच्छादित था। एशिया का रूसी भू-भाग, इंडोनेशिया, दक्षिण अरब, दक्षिण भारत का कुछ हिस्सा, आस्ट्रेलिया के पश्चिमी एवं पूर्वी किनारे को छोड़कर संपूर्ण यूरोप, एशिया, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड समुद्र के तल में समाए थे। चीन का कुछ हिस्सा पूर्व साइबेरिया से होकर अमेरिका के पश्चिमी भाग से जुड़ा था।

विशेषज्ञ पृथ्वी के भू-भाग पर होते रहने वाले परिवर्तनों के अनेक कारण बताते हैं जैसे भूकंपों, ज्वालामुखियों का आतंक, समुद्री उथल-पुथल आदि। जल की जगह थल और थल के स्थान पर जल का नृत्य सतत चलता रहा है। इस परिवर्तनक्रम में हिमयुगों की भी असाधारण भूमिका रही है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इस पृथ्वी पर चार बार हिमयुग आ चुका है। मानव जाति इस समय चौथे हिमयुग की निकटवर्ती अवधि में रह रही है।

सारे परिवर्तन यह बताते हैं कि पृथ्वी इन सबसे भलीभाँति अभ्यस्त है। वास्तव में देखा जाए तो इस भूखंड पर दृश्यमान गति ही

जीवन और अगति ही मृत्यु का प्रतीक है। सृष्टि में सुसंचालन, सुव्यवस्था एवं अस्तित्व बने रहने के लिए गति आवश्यक है। वैज्ञानिकों का कहना है कि पृथ्वी नहीं उसके पिंड-टुकड़े भी चल रहे हैं। वे अनेकों बार पृथ्वी से अलग हुए, अनेकों बार जुड़े। सात महाद्वीपों में पृथ्वी का विभाजित होना टुकड़ों के गतिशील होने का ही परिचायक है। नवीन शोधों के अनुसार ये महाद्वीप भी अपने स्थानों से खिसक रहे तथा स्थान बदल रहे हैं। पृथ्वी के विभिन्न भू-भागों की गति का अध्ययन करने वाले विज्ञान की इस शाखा का नाम ग्लोबल प्लेट टेक्टोनिक्स है। यह भी पता लगा है कि पृथ्वी पूर्णतया ठोस नहीं है। इसके केंद्र में अतिशय गाढ़ा तरल पदार्थ है, जिसकी सतह पर ६५ कि. मी. से ९५ कि. मी. तक की मोटी परत के दस टुकड़े तैरते रहते हैं। इस शाखा में अध्ययन करने वाले विशेषज्ञों का कहना है कि २० करोड़ वर्ष पहले ये दसों टुकड़े आपस में मिले हुए थे तथा एक ही महाद्वीप था। गति के कारण कालांतर में सात द्वीप में विभाजित हो गया। यह महाद्वीप भी स्थिर नहीं है। १ से. मी. से लेकर १५ से. मी. तक प्रति वर्ष ये विभिन्न दिशाओं में खिसकते जा रहे हैं। यूरोप और उत्तरी अमेरिका एक दूसरे से प्रतिवर्ष २.५ से. मी. दूर होते जा रहे हैं। प्रतिवर्ष अनेक स्थानों पर आने वाले भूकंपों का एक कारण यह भी बताया जाता है कि कभी-कभी तैरती हुई पृथ्वी की दो परतें आपस में टकरा जाती हैं। फलस्वरूप हलचल होती तथा घर्षण के कारण कई बार लावा निकलता तथा नए पहाड़ तक बन जाते हैं।

अमेरिका की ईस्ट ऐंजिलिया यूनीवर्सिटी के भू-गर्भ वैज्ञानिक एफ. गे. बिने एवं कैंब्रिज यूनीवर्सिटी के डी. एच. मैथ्यू ने सन् १९६३ में अपने अनुसंधानों के उपरांत घोषणा की कि पृथ्वी के ध्रुव खिसककर अपना स्थान बदलते जा रहे हैं। पिछली बार ध्रुवों को स्थान बदले ७ लाख वर्ष हो गए। इस तथ्य की जानकारी समुद्र की तलहटी की मिट्टी की रेडियोएक्टिविटी द्वारा मिली है। अमेरिका में तो

पाँच संस्थान इस अनुसंधान कार्य में लगे हैं, जिनमें स्क्रिप्स इंस्टीट्यूशन ऑफ ओसिनोग्राफी प्रमुख है। शोध कार्य के लिए संस्था ने एक विशेष प्रकार का ग्लैमर चैलेंजर नामक जहाज का निर्माण किया है। इस जहाज द्वारा पिछले कुछ वर्षों में समुद्र की तलहटी में ३०० से भी अधिक छिद्र मिले हैं। छिद्रों की गहराई एक हजार मीटर से भी अधिक है। इनके भीतर से निकाली गई मिट्टी १६ करोड़ वर्ष पुरानी बताई जाती है।

प्रसिद्ध भू-गर्भवेत्ता राबर्टजीन और जान हौल्डन का कहना है कि २० करोड़ वर्ष पूर्व जापान उत्तरी ध्रुव के पास था और भारत दक्षिणी ध्रुव के पास। सर्वप्रथम आस्ट्रेलिया और भारत दक्षिणी ध्रुव से अलग हुए और क्रमशः खिसकते हुए आज की स्थिति में आ गए। यह प्रक्रिया १८ करोड़ वर्ष पूर्व आरंभ हुई, जिसमें सर्वाधिक यात्रा भारत के भू-भाग ने ८८०० मील की तय की है।

इन वैज्ञानिकों का कहना है कि निकट भविष्य में उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका पश्चिम की ओर बढ़ेंगे तथा पनामा और मध्य अमेरिका उत्तर की ओर। पृथ्वी के भीतरी खंडों के खिसकने, गति करने के कारण हिमालय पर्वत और ऊँचा उठेगा तथा भारत का भू-भाग पूर्व की ओर बढ़ेगा। आस्ट्रेलिया उत्तर की ओर बढ़ता हुआ एशिया के भू-भाग से मिल जाएगा। भूमध्य सागर पर नए द्वीप उभरने की संभावना भी की जा रही है। ऐसी स्थिति में जैसे-जैसे अफ्रीका और यूरोप निकट आते जाएँगे, भूमध्य सागर का अस्तित्व क्रमशः मिटता जाएगा। यह तो भविष्य की चर्चा हुई।

वैज्ञानिक भूतकाल के बारे में भी काफी कुछ जानकारी रखते हैं। पृथ्वी के आविर्भाव से अब तक की स्थितियों का विश्लेषण कर सकने में वे इसी कारण समर्थ भी हुए हैं।

पृथ्वी के स्वरूप एवं इतिहास की जानकारी प्राप्त करने वाले भू-भौतिकीविदों का मत है कि आज की तुलना में पृथ्वी की स्थिति

पहले भिन्न थी। पृथ्वी की उत्पत्ति के संदर्भ में संकुचन और प्रवाह के दो सिद्धांत प्रमुख हैं। संकुचन सिद्धांत के अनुसार पृथ्वी आरंभ में बहुत गरम थी, फिर धीरे-धीरे ठंढी होकर संकुचित हुई। इस संकुचन के फलस्वरूप महाद्वीपों का विस्थापन शुरू हुआ। इन विशेषज्ञों का अभिमत है कि किसी प्रागैतिहासिक युग में आस्ट्रेलिया, दक्षिण एशिया, अफ्रीका तथा दक्षिण अमेरिका महाद्वीप एकदूसरे से जुड़े हुए थे, जो बाद में अलग-अलग हो गए।

अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ. राबर्ट एस. दिएज तथा डॉ. सी. होल्डेन ने महाद्वीपों के तैरने की गति, उनके फिसलने की दिशा, उनकी वर्तमान स्थिति, समुद्रगर्भीय पर्वत श्रेणियों का विस्तार, चुंबकीय जल क्षेत्रों की प्राचीन दिशाएँ तथा भूगर्भीय संरचना में समानताएँ आदि तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि अब से २५ करोड़ ५० लाख वर्ष पूर्व पर्मियन युग में सभी महाद्वीप एकदूसरे से जुड़े हुए थे, सात में विभक्त न थे, मात्र एक महाद्वीप था। उसे तब पेंजिया कहा जाता था। उस समय दक्षिण अमेरिका अफ्रीका से सटा हुआ था और अमेरिका का पूर्वी समुद्री तट उत्तरी अफ्रीका के भूखंड से चिपका हुआ था। आस्ट्रेलिया महाद्वीप अंटार्कटिका का एक भाग था तथा भारत दक्षिण अफ्रीका एवं अंटार्कटिका के बीच दबा हुआ था।

होल्डेन के अनुसार यह महाद्वीप एक किनारे पर ६० अंश, पश्चिम के देशांतर से १२० अंश पूर्व देशांतर तक अवस्थित था। उस समय तक पृथ्वी की आयु साढ़े चार करोड़ वर्ष हो चुकी थी। छोटे-छोटे पौधे तथा जीव-जंतु अस्तित्व में आ चुके थे। पेंजिया महाद्वीप ५० लाख वर्ष बाद ही कई खंडों में विभाजित होने लगा। पहले वह दो भागों में बँटा—उत्तरी और दक्षिणी उपखंडों में जो क्रमशः लारेशिया और गोंडवाना नाम से प्रख्यात हुए। लारेशिया में उत्तरी अमेरिका तथा एशिया सम्मिलित थे तथा गोंडवानालैंड में दक्षिण अमेरिका और अंटार्कटिका। लगभग १३ करोड़ वर्ष पूर्व वे दोनों विशाल भू-भाग भी

छोटे उपखंडों में विभाजित हो गए तथा छह करोड़ पचास लाख वर्ष पूर्व से महाद्वीप धीरे-धीरे फिसलते हुए एकदूसरे से अलग होते गए और अंततः आज की स्थिति में आ पहुँचे।

दोनों भू-भौतिकीविदों का मत है कि महाद्वीपों तथा महासागरों की स्थिति ठीक वैसी है जैसे पुरानी जमी हुई बरफ पर नई बरफ की परत का जमना। जब गरमी पड़ती है तो नई बरफ की परत थोड़ी पिघलती है और पुरानी बरफ की सतह पर फिसलने लगती है, जबकि पुरानी बरफ की परत पहले की भाँति जमी रहती है। हमारी पृथ्वी के महाद्वीप तथा महासागर लगभग ८० किलोमीटर या उससे भी अधिक मोटे एक ठोस पदार्थ की परत पर अवस्थित थे। ठोस पदार्थ की वह परत लाखों वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली हुई है एवं पृथ्वी के गर्भ में तैरती अथवा फिसलती है तथा महाद्वीपों, महासागरों के फिसलने का कारण बनती है।

महाद्वीपों की गति एवं स्थानांतरण से नए द्वीप एवं पर्वत भी बनते-मिटते रहते हैं। अमेरिकी भूगर्भशास्त्री डॉ. जॉन एफ. वर्ड तथा जॉन एफ. डेवी के अनुसार फिसलन की प्रक्रिया में भारत उपमहाद्वीप का भूखंड एशिया महाद्वीप के भूखंड से टकराया तो एक गहरी खाई बन गई। दोनों भूखंड एकदूसरे को दबाते रहे और उनके किनारे क्रमशः नीचे की ओर धँसते गए। ऊपर का पदार्थ नीचे गर्भ क्रोड की तरफ चलता गया। अंततः जब दोनों टकराए, तब उनका अपेक्षाकृत हलका पदार्थ मुख्य भूखंड से अलग होकर ऊपर उठ गया और उसने बाद में हिमालय पर्वत जैसा आकार ग्रहण कर लिया। पर्वतों के निर्माण की यही प्राकृतिक विधि है।

बीरबल साहनी पुरावनस्पति संस्थान लखनऊ के पुरावनस्पति शास्त्री डॉ. आर. जे. लखनपाल एवं उनके सहयोगी डॉ. एस. गुलेरिया ने अपने अध्ययनों से निष्कर्ष निकाला है कि भारत के उत्तरी सिरे पर बिना पेड़-पौधे व भीषण ठंढ वाले क्षेत्र लद्दाख की जलवायु पहले

गरम शीतोष्ण हुआ करती थी। यह लगभग डेढ़ करोड़ वर्ष पहले की बात है। लद्दाख के कुछ हिस्से से मिले हिमालयी पाम व गुलाब की प्रजाति के जीवावशेषों के अध्ययन के आधार पर उन्होंने उपरोक्त निष्कर्ष निकाले हैं। खोज में यह बात भी सामने आई है कि पिछले डेढ़ करोड़ वर्षों में हिमालय की ऊँचाई तीन हजार मीटर बढ़ गई है।

प्रख्यात वैज्ञानिक टेलर ने सन् १९१० में बताया कि पृथ्वी की घूर्णन गति में परिवर्तन के फलस्वरूप महाद्वीपों का विस्थापन दो दिशाओं में हुआ। एक दोनों ध्रुवों से भूमध्य रेखा की ओर दूसरा अफ्रीका से पश्चिम की ओर। पहले प्रकार के विस्थापन से आल्पस, हिमालय, काकेशस आदि पर्वत बने तथा दूसरे प्रकार से रॉकी, एंडीज बन गए।

ब्रिटेन के प्रसिद्ध वैज्ञानिक ब्लेकेट महोदय ने लगातार कई वर्षों के ध्रुवों के अध्ययन के पश्चात यह निष्कर्ष निकाला कि महाद्वीपीय विस्थापना की प्रक्रिया चलती रहती है। उन्होंने यह भी बताया कि भू-चुंबकत्व की दिशा में भी परिवर्तन होता रहता है। अनेकों बार पृथ्वी के उत्तरी-दक्षिणी चुंबकीय ध्रुव दक्षिणी-उत्तरी में बदले हैं। जब ध्रुव बदलते हैं तो संसार की अन्य भौगोलिक परिस्थितियों में भी विशेष अंतर आता है। ब्लेकेट महोदय का मत है कि लगभग सात करोड़ वर्ष पहले भारत भूमध्य रेखा के दक्षिण में था। अमेरिका, अफ्रीका, यूरोप व भारत निरंतर उत्तर की ओर खिसक रहे हैं। तीस करोड़ वर्ष पूर्व पेरिस भूमध्य रेखा पर था और यूरोप उसके समीप था। द्वीपों के खिसकने की दिशाओं में भी समय-समय पर परिवर्तन आते रहते हैं।

सन १९६० में डॉ. हैरीहेस ने महाद्वीपों के खिसकने के एक नए हेस के प्लेट-टेक्टॉनिक सिद्धांत को जन्म दिया। उनका कहना था कि महाद्वीपों के खिसकने का कारण है—पृथ्वी में रेडियोएक्टिव तत्त्वों की उपस्थिति। उनसे ही अत्यधिक उष्मा पैदा होती है, जो संवहन धाराओं

को जन्म देती है। ये संवहन धाराएँ अपने प्रवाह में महाद्वीपों की स्थिति को भी प्रभावित करती हैं।

सोवियत विज्ञान अकादमी के भू-भौतिकी संस्थान के विशेषज्ञ वैज्ञानिक विगत २५ वर्षों से पामीर की पीटर प्रथम तथा कारातेगीन्स्की पर्वतमालाओं का अध्ययन कर रहे हैं। उनका मत है कि २५ साल में ये पर्वतमालाएँ एकदूसरे के आधा मीटर और पास खिसक आई हैं।

कौन महाद्वीप कब-किधर खिसक जाएगा, इसकी सुनिश्चित भविष्यवाणी कर सकना तो असंभव है। पर पृथ्वी की चुंबकीय क्षेत्र की विभिन्नता के आधार पर भू-भौतिकविदों के एक दल ने संभावना व्यक्त की है कि निकट भविष्य में महाद्वीपों की स्थिति में परिवर्तन अग्र प्रकार होंगे—

अफ्रीका उत्तर की ओर खिसकेगा तथा यूरोप के निकट हो जाएगा तथा भूमध्यसागर या तो बहुत छोटा हो जाएगा अथवा विलुप्त हो जाएगा। लॉस ऐंजिल्स सहित कैलीफोर्निया का कुछ भाग उत्तर की ओर खिसकेगा तथा उत्तरी अमेरिका से अलग हो जाएगा।

भारतीय विशेषज्ञ डॉ. चौधरी के अनुसार उत्तर प्रदेश और बिहार प्रति वर्ष पाँच से. मी. उत्तर की ओर खिसक रहे हैं। इस प्रक्रिया से एक समय ऐसा आएगा जब ये दोनों प्रांत हिमालय के नीचे होंगे। जर्मनी के ज्वालामुखी विशेषज्ञ हेरन ताज़िफ का कहना है कि अफ्रीका के इथियोपिया राष्ट्र का कुछ अंश लाल सागर में डूब जाएगा जिसके बाद एक नया सागर बन जाएगा। दक्षिणी अमेरिका के उत्तर में स्थित कैरेबियन सागर में नए छोटे-छोटे स्थल खंड द्वीप बन जाएँगे जैसे कि अभी उसके आस-पास सेंट लूसिया, जमाइका, प्यूटोरिको, डामिनिका आदि अनेक द्वीप हैं। इस प्रकार अनुमानतः सभी महाद्वीप १० सेंटीमीटर प्रतिवर्ष की गति से खिसक रहे हैं।

गति एवं परिवर्तन का यह क्रम पिंड एवं ब्रह्मांड में सर्वत्र ही चल रहा है। कितने ही जीव नित्य पैदा होते और कितने ही मरते हैं, कितने ही पदार्थ विखंडित होते और कितने ही जुड़ते हैं। परिवर्तन की

यह शृंखला पृथ्वी ही नहीं सारी सृष्टि में चलती रहती है। तारों ग्रह-उपग्रहों में भी कितने ही अपना स्थान बदलते रहते, टूटकर नष्ट-भ्रष्ट होते रहते हैं। आवश्यक नहीं कि उन सभी की जानकारी मनुष्य को हो। अभी तो कितने ही ग्रह-नक्षत्रों के विषय में जानकारी तक नहीं मिल पाई है। उनके स्वरूप एवं होने वाले परिवर्तनों की जानकारी तो दूर की बात है। भौतिकी यंत्रों की पकड़ में आने वाली संरचनाओं की ग्रह-नक्षत्रों की ही जानकारी वैज्ञानिकों को मिल सकी है। गति एवं परिवर्तन की स्वसंचालित प्रक्रिया में बनी इस सृष्टि की अनेक गतिविधियाँ अब भी रहस्यमय बनी हैं। इस प्रकार ब्रह्मांड से पृथ्वी एवं भू-गर्भ तक सभी परिवर्तन प्रक्रिया से प्रभावित होते देखे जा सकते हैं।

परिवर्तन के नियमों से मनुष्य भी बँधा है। एक हालत में न तो मनुष्य की शारीरिक स्थिति रहती है और न ही प्रकृति की। जन्मा हुआ शिशु नित्य नए दौर से गुजरता तथा विकास की एक निश्चित मंजिल नित्य पूरी करता है। किशोरावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था आदि से गुजरता हुआ मृत्यु को प्राप्त होता है। शरीर में हुए परिवर्तनों के अनुरूप उसे अपनी मनःस्थिति में भी परिवर्तन करना पड़ता है। जो मनःस्थिति बचपन की होती है, वह युवावय में नहीं होती। वृद्धावस्था में मन की प्रकृति बदल जाती है।

गति एवं परिवर्तन सृष्टि की अनिवार्य प्रक्रिया है, जिसके चक्र में सभी जड़-चेतन बँधे हैं। परिवर्तन की इस प्रक्रिया को अन्य जीव सहर्ष स्वीकार करते तथा उसके अनुरूप अपनी गतिविधियों का तालमेल बिठाते हैं। मनुष्य ही है जो सदा अनुकूल परिस्थितियों में ही बना रहना चाहता है तथा प्रतिकूल में समायोजन नहीं कर पाता। सृष्टि की इस अनिवार्य प्रक्रिया एवं तथ्य को स्वीकार करना ही विवेकसंगत है। तटस्थता, स्थिरता तो मृत्यु का परिचायक है, परिवर्तनशीलता जीवन का। कालचक्र में बँधी इस परिवर्तन प्रक्रिया को स्वीकार करने, उसके अनुरूप अपनी गतिविधियों का निर्धारण करने से ही संतुष्ट बना रहा जा सकता है।

❒

व्यष्टि व समष्टि सत्ता के संपर्क सूत्र : ध्रुवकेंद्र

अपनी पृथ्वी देखने में अपनी धुरी पर घूमती, अपनी कक्षा में दौड़ लगाती और आत्मनिर्भर दीखती है, पर वास्तविकता वैसी है नहीं। सौर परिवार के सदस्यों की आकर्षण शक्ति उन्हें एक व्यवस्था-क्रम में जकड़े हुए है। उनमें गड़बड़ी पड़े तो किसी भी ग्रह-नक्षत्र के अनियंत्रित होकर किसी दूसरे के साथ टकरा जाने—स्वयं मरने और दूसरे को मारने का पूरा-पूरा खतरा उत्पन्न हो जाएगा। पृथ्वी को जीवन सूर्य से प्राप्त हुआ है। उसी की रोशनी और गरमी से धरातल पर अगणित गतिविधियाँ चलतीं और अनेक संपदाएँ उत्पन्न होती हैं। ऋतुओं की उपयोगिता सभी समझते हैं। वे अपने आप नहीं आ टपकतीं वरन पृथ्वी और सूर्य की दूरी बदलते रहने से ही ऋतु परिवर्तन संभव होता है। पराश्रित तो किसी न किसी अंश में सभी ग्रह-नक्षत्र होते हैं, पर पृथ्वी की जो विशेष स्थिति हैं, उसमें उसका अपना वैभव कम और अंतर्गृही अनुदान विशेष हैं। सूर्य तो पृथ्वी का जीवनदाता प्राण है। इस आदान-प्रदान का सिलसिला टूट जाए या घट-बढ़ जाए तो समझना चाहिए कि भूतल का सारा वैभव देखते-देखते तिरोहित हो जाएगा। तब यहाँ श्मशान जैसी स्तब्धता छाई होगी।

मात्र सूर्य से ही नहीं, पृथ्वी को अन्यान्य ग्रह-नक्षत्रों से भी असंख्य अनुदान मिलते हैं। उत्तरी ध्रुव की विशेषताओं में एक यह है कि उसका विचित्र चुंबकत्व अपने उपयोग की आवश्यक वस्तुएँ अनंत अंतरिक्ष से खींचता रहता है। यह सूक्ष्म अनुदान एक ग्रह दूसरे की सुविधा के लिए आकाश में बिखेरता रहता है। लेन-देन तो दूसरे ग्रहों में भी चलता रहता है, पर इस संदर्भ में पृथ्वी की चतुरता और क्षमता

अत्यधिक है कि वह दूसरों के द्वारा बिखेरी हुई संपदाओं में अपने काम की चीजें बड़ी मात्रा में कुशलतापूर्वक समेट ले। यदि ध्रुवों के चुंबकत्व में यह विशेषता न होती तो पृथ्वी को ग्रह परिवार से ये गौरव न मिला होता, जो अद्‌भुत सौभाग्य की तरह उपलब्ध है।

उपरोक्त विश्लेषण से इस तथ्य का रहस्योद्‌घाटन होता है कि मात्र व्यक्ति या समाज ही नहीं, ग्रह-नक्षत्र भी एकदूसरे पर आश्रित हैं और पारस्परिक सहयोग एवं आदान-प्रदान से अपना काम चलाते हैं। इसे बैंकिंग पद्धति या सहकारी व्यवस्था के समतुल्य माना जा सकता है। शासन, अर्थ, तंत्र, कानून, समाज का स्वरूप आदि संसार की अधिकांश गतिविधियाँ इसी आधार पर चल रही हैं। यह सौरमंडल ही नहीं, सारा ब्रह्मांड उसी आधार पर जीवित और गतिशील है।

पृथ्वी अपनी विशिष्टताओं को बनाए रहने में बहुत कुछ सूर्य पर निर्भर है। दूर रहते हुए भी वह पृथ्वी को इतना उदार दुलार देता है कि उसे देखते हुए पति-पत्नी अथवा प्रेमी-प्रेमिका जैसा रिश्ता मानने को जी करता है। पृथ्वी भी तो उसी का मुँह निहारते और परिक्रमा करते रहने में अपने जीवन की सार्थकता मानती है।

चंद्रमा का पृथ्वी पर कितना प्रभाव पड़ता है? यह समुद्रतट पर जाकर प्रतिदिन के सामान्य और पूर्णिमा अमावस्या के ज्वार-भाटे देखकर सहज ही जाना जा सकता है। चंद्रमा को रसराज कहा गया है। कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष में वनस्पतियों तथा प्राणियों में सरसता की जो घट-बढ़ होती रहती है उससे पता चलता है कि न केवल समुद्र को वरन पृथ्वी की समग्र सरसता को वह व्यापक रूप से प्रभावित करता है। यह तो ग्रहों के पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभाव का एक उदाहरण मात्र है। वास्तविकता यही है कि ब्राह्मी चेतना का यह सारा व्यापार आपसी आदान-प्रदान की एक सुनियोजित विधि व्यवस्था के अंतर्गत चल रहा है।

सौरमंडल के अन्यान्य ग्रह-उपग्रह अपने-अपने स्तर के रंग-बिरंगें—छोटे-बड़े उपहार पृथ्वी को अनवरत रूप से भेजते हैं। पृथ्वी भी चुप नहीं बैठी रहती, वह भी आदान-प्रदान का शिष्टाचार और समूह-कर्त्तव्य समझती है तदनुसार अपने अनुदान अन्य ग्रहों को भेजती है। इन प्रेषणों का लाभ वे ग्रह भी उसी प्रकार उठाते हैं जिस प्रकार कि पृथ्वी उनसे। इस आदान-प्रदान का महत्त्वपूर्ण केंद्र ध्रुवीय क्षेत्र है। अंतर्गृही आदान-प्रदान इन्हीं छिद्रों से आते-जाते हैं। उत्तरी ध्रुव से ग्रहण की और दक्षिणी ध्रुव से विसर्जन की प्रक्रिया संपन्न होती रहती है। उत्तर में आदान का और दक्षिण में प्रदान का संयन्त्र नियति ने फिट करके रखा है। उत्तर को मुख और दक्षिण को मलद्वार कह सकते हैं। जितना उपयोगी है उतना पचाकर पृथ्वी का शरीर अपने में धारण कर लेता है और जो अनावश्यक है उसे मल रूप में विसर्जित कर देता है। प्राणि शरीर की तरह धरती भी एक शरीर है जिसे अपनी जीवनचर्या की सामग्री अंतर्गृही शक्ति-भंडार से उपलब्ध करनी पड़ती है। शरीर को हवा, पानी और अन्न भी तो बाहर से ही उपलब्ध करना पड़ता है। अंतर्गृही हाट से आवश्यक वस्तुएँ खरीदे बिना धरती की गुजर नहीं हो सकती। ठीक इसी प्रकार प्राणी को भी अपनी सूक्ष्म चेतनात्मक उपलब्धियों के लिए अंतर्गृही-ब्रह्मांडीय चेतना पर निर्भर रहना पड़ता है। मस्तिष्क मुख है। ग्रहण शक्ति उसी में है। जननेंद्रिय विसर्जन संस्थान है। दोनों को प्राणि सत्ता के ध्रुवकेंद्र कहा जा सकता है। ऊर्ध्वकेंद्र को शिव और अधः संस्थान को शक्ति संस्थान माना गया है। इन्हें ब्रह्मवर्चस् और कुंडलिनी केंद्र भी कहते हैं। इनके बीच पारस्परिक संबंध संतुलन ठीक बना रहे तो सब कुछ ठीक बना रहेगा और अभीष्ट प्रगति का लक्ष्य पूरा होता रहेगा। इनके बीच असंतुलन या अवरोध उत्पन्न होने से अपच और तज्जनित अनेकों रोग-विकार उत्पन्न होने लगते हैं। भूवैज्ञानिकों के अनुसार दक्षिणी ध्रुव समुद्रतल से

१९००० फुट उभरा हुआ है। इसे विश्व शरीर की जननेंद्रिय का उभार कह सकते हैं। पुराणों में इसे शिवलिंग कहा गया है। नारी की जननेंद्रिय में भी यह उभार छोटे रूप में पाया जाता है। समष्टि और व्यष्टि में कितनी एकरूपता है, इसकी झाँकी ध्रुवों की संरचना में दृष्टिगोचर होती है।

सोवियत रूस के वैज्ञानिक डॉ. जी. ए. उशाकोव ने अपने ध्रुव शोध के विवरणों में एक और नया तथ्य प्रतिपादित किया है। वे कहते हैं कि जीवन का आधार मानी जाने वाली ऑक्सीजन वायु पृथ्वी की अपनी उपज अथवा संपत्ति नहीं है। वह सूर्य के प्राण रूप में प्रवाहित होती हुई चली आती है और धरती के वातावरण में यहाँ की तात्त्विक प्रक्रिया के साथ सम्मिश्रित होकर प्रस्तुत ऑक्सीजन बन जाती है। यदि सूर्य अपने उस प्राण-प्रवाह में कटौती कर दे अथवा पृथ्वी ही किसी कारण उसे ठीक तरह ग्रहण न कर सके तो ऑक्सीजन की न्यूनता के कारण धरती का जीवन संकट में पड़ जाएगा। पृथ्वी से ६२ मील ऊँचाई पर यह प्राण ऑक्सीजन बादलों की तरह चाहे जहाँ नहीं बरसता रहता वरन वह भी सीधा उत्तरी ध्रुव पर आता है और फिर दक्षिणी ध्रुव के माध्यम से समस्त विश्व में वितरित होता है। ध्रुव प्रभा में रंग-बिरंगी झिलमिल का दीखना विद्युतमडंल के साथ ऑक्सीजन की उपस्थिति का प्रमाण है।

कभी-कभी सूर्यमंडल में विशेष उत्क्रांति उत्पन्न होने से उस प्रवाह की एक लहर पृथ्वी पर भी चली आती है और ध्रुव प्रदेश में चुंबकीय आँधी-तूफानों का सिलसिला चल पड़ता है। इनकी प्रतिक्रिया उसे ध्रुवक्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रखती वरन समस्त विश्व को प्रभावित करती है। कई बार चुंबकीय तूफान बड़े उपयोगी और सुखद परिणाम उत्पन्न करते हैं और कई बार इनमें कुछ ऐसे तत्त्व घुले हुए चले आते हैं जिनका प्रभाव समस्त विश्व को कई प्रकार के संकटों में धकेल देने की सामर्थ्य रखता है।

अंतर्गृही ऊर्जाएँ पृथ्वी पर उत्तरी ध्रुव क्षेत्र में होकर छनी हुई उपयुक्त एवं आवश्यक मात्रा में ही प्रवेश करती हैं और पृथ्वी को अभीष्ट परिपोषण देने के उपरांत दक्षिणी ध्रुव में होती हुई बहिर्गमन कर जाती हैं। एक सिरे से प्रवेश करके चूहा जिस प्रकार बिल के दूसरे सिरे से निकल भागता है, उसी प्रकार अंतर्गृही विकिरण धरती के एक सिरे से प्रवेश करता और दूसरे से बाहर निकलता रहता है। उत्तरी ध्रुव क्षेत्र में एक ऐसी चुंबकीय छलनी है, जो केवल उसी प्रवाह को भीतर प्रवेश करने देती है जो उपयोगी है। छलनी में बारीक आटा ही छनता है और भूसी ऊपर रह जाती है। ठीक इसी प्रकार ध्रुवीय छलनी में भी पृथ्वी के लिए उपयोगी विकिरण आते हैं और शेष को पीछे धकेल दिया जाता है।

उत्तरी ध्रुव पर यह छानने की क्रिया टकराव के रूप में देखी जा सकती है। इस टकराव से एक विलक्षण प्रकार की ऊर्जा, कंपन उत्पन्न होते हैं, जिनकी प्रत्यक्ष चमक उस क्षेत्र में प्रायः देखने को मिलती रहती है। उसे ध्रुवप्रभा या मेरु प्रकाश कहते हैं। इसका दृश्यमान प्रत्यक्ष रूप जितना अद्‌भुत है उससे अधिक रहस्यमय उसका अदृश्य रूप है। इस मेरुप्रभा का प्रभाव स्थानीय ही नहीं होता वरन समस्त भूतल को यह प्रभावित करता है। भू-गर्भ में, समुद्र तल में, वायुमंडल में, ईथर के महासागर में जो विभिन्न प्रकार की हलचलें होती रहती हैं—चढ़ाव-उतार आते रहते हैं, उनका बहुत कुछ संबंध इस ध्रुवप्रभा एवं मेरुप्रकाश से होता है। इतना ही नहीं, उसकी हलचलें प्राणधारियों की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति को भी प्रभावित करती हैं। मनुष्यों पर तो उसका प्रभाव विशिष्ट रूप से होता है। सुविज्ञ लोग उस प्रभाव-प्रवाह में से अपने लिए उपयोगी तत्त्व खींच लेने, धारण कर लेने में भी सफल होते हैं और उसमें असाधारण लाभ प्राप्त करते हैं।

सूर्य से पृथ्वी पर जो शक्ति बरसती है, वह इतनी है कि एक वर्ग इंच की शक्ति से ६० हार्स पावर का इंजन चल सके। पूरी पृथ्वी पर सूर्य जो ताप फेंकता है, वह प्रति सेकंड इतना होता है जितना १२ हजार अरब टन कोयला जलाने पर ही पैदा किया जा सकता है। सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर प्रति वर्ग इंच इतना होता है, जितना तीन लाख मोमबत्तियाँ जलाने से पैदा किया जा सके। सूर्य की शक्ति का २२० करोड़वाँ भाग ही पृथ्वी पर पहुँच पाता है। इतना ही नहीं प्रतिवर्ष मनुष्य जाति ९०००००००००००००००००० फुट पोंड ऊर्जा आकाश में भेजती रहती है, जबकि हमारे जीवन को एवं अपने समस्त ब्रह्मांड को गतिशील रखने के लिए सूर्य प्रति सेकंड चार सौ सेक्टींलियन अर्थात दस अरब इक्कीस करोड़ किलोवाट शक्ति अपने सौरमंडल में बिखेरता और उसे क्रियाशील बनाए रखता है।

इस ऊर्जा समुच्चय एवं अंतर्गृही आदान-प्रदान के क्रिया-कलाप की जब ब्रह्मांड के विराट रूप में देखते हैं तो वैज्ञानिक हतप्रभ रह जाते हैं। यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि हमारी अपनी ही धरती का व्यास १२७००० किलोमीटर और वजन ६,६००,०००,०००,००० अरब टन है। वह ३० किलोमीटर प्रति सेकंड की उड़ान भरती हुई ३६५ दिन में सूर्य की एक परिक्रमा करती है। सूर्य और पृथ्वी के बीच की औसत दूरी ९ करोड़ ३० लाख मील है।

यह तो विराट की एक झलक भर हुई। यह भी एक विलक्षण एवं याद रखने योग्य तथ्य है कि पृथ्वी के आकार से सूर्य का आकार १३ गुना बड़ा है। जिस ध्रुव तारे की सूर्य अपने ग्रह परिवारसमेत परिक्रमा करता है, वह उसकी तुलना में ३ लाख गुना बड़ा है। ध्रुव के परिवार में अनेक सौरमंडल सम्मिलित हैं। वह उन सबको समेटे हुए महाध्रुव की परिक्रमा के लिए दौड़ रहा है। महाध्रुव का आकार-प्रकार और चुंबकत्व अपने ध्रुव से अत्यधिक वृहत है।

इतने वजन से लदे हुए इतनी तीव्र गति से चल रहे इस परिभ्रमण में शक्ति खरच होती है और वह कहीं न कहीं से आनी ही चाहिए। स्पष्ट है कि सूर्य की उत्तेजना से पृथ्वी का अंतराल उफनता है। दोनों के समन्वय से वह क्षमता उत्पन्न होती है जो इस भूमंडल की असंख्य गतिविधियों को संचालित करती है। साधन-सामग्री सीमित है, असीम नहीं।

सूर्य एक सेकंड में २०० ट्रिलियन अर्थात १००० मिलियन (१०००,००००० किलोवाट) किलोवाट ऊर्जा पृथ्वी पर फेंकता है। वह ऊर्जा इतनी अधिक होती है कि उससे हाइडल पावर (जल ऊर्जा) उत्पन्न करने वाले मानव निर्मित बिजलीघर के समान अनेकों करोड़ बिजली घर स्थापित हो सकते हैं। सारी पृथ्वी की चार अरब आबादी तथा चींटी, मक्खी, कौवे, गिद्ध, भेड़, बकरी, गाय, हाथी, शेर, पेड़-पौधे, बादल, समुद्र सभी इस शक्ति से ही गतिशील हैं। जिसमें यह शक्ति जितनी अधिक है (प्राणतत्त्व की अधिकता) वह उतना ही शक्तिशाली और वैभव का स्वामी है। कीड़े-मकोड़े उसके एक कण से ही जीवित हैं तो वृक्ष-वनस्पतियाँ उसका सबसे अधिक भाग उपयोग में लाती हैं। मनुष्य इन सबसे भाग्यशाली है क्योंकि वह इस शक्ति के सुरक्षित और संचित कोश को भी प्राणायाम और योग-साधनाओं द्वारा मनचाही मात्रा में प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता है। इस प्रचंड प्राण ऊर्जा के सुनियोजन की चमत्कारी फलश्रुतियाँ हैं। प्रश्न मात्र क्रमबद्ध सदुपयोग का है।

उपरोक्त वर्णन से ऐसा लगता है कि सूर्य असीम शक्ति का भंडार है, पर वस्तुतः वह भी विराट ब्रह्मांड के महासंचालक ब्रह्म सूर्य का एक नगण्य सा घटक ही है। सूर्य अपनी शक्ति उसी प्रकार अपने सूत्र-संचालक महासूर्य से प्राप्त करता है जैसे कि अपनी पृथ्वी सौरमंडल के अधिष्ठाता अपने सूर्य से। जीव और ईश्वर की दूरी ही उसकी शक्ति

को दुर्बल बनाती है। यदि यह दूरी घटती जाए तो निश्चित रूप से सामर्थ्य बढ़ेगी और स्थिति वह न रहेगी, जो आज कृमि-कीटकों जैसी दिखाई पड़ रही है।

ब्राह्मी चेतना के महासागर में तैर रही हमारी पृथ्वी में एक दूसरे किस्म का वायुमंडल भी है, जिसे आकर्षण चुंबकत्व अथवा ग्रेविटी के नाम से पुकारते हैं। यह चुंबकत्व प्लाज्मा को प्रभावित करता है और उसकी प्रतिक्रिया लौटकर फिर पृथ्वी पर आती है। इस प्रकार का आदान-प्रदान और भी विस्तृत क्षेत्र पर अधिकार जमाता है। इस चुंबकीय प्रत्यावर्तन को संपन्न करने वाला वायुमंडल की तरह का ही एक चुंबकीय मंडल भी है। यह भी पृथ्वी का ही विस्तार है, इसे उसी का आधार साधन अथवा अधिकार क्षेत्र कह सकते हैं। इस प्लाज्मा-प्रवाह के कारण ही सूर्य की शक्ति धरती तक नियंत्रित रूप से आना संभव होती है और अन्य ग्रहों से उसका संपर्क बनता है। इसलिए धरती की परिधि नापनी हो तो उसकी गणना वायुमंडल को आधार मानकर नहीं वरन चुंबक मंडल की परिधि के आधार पर नापनी चाहिए।

इस प्लाज्मा को ही प्रकारांतर से सूक्ष्मजगत का प्राणतत्व माना जा सकता है। पृथ्वी सौभाग्यशाली है कि उसे जीवन मिला, उससे भी बड़े सौभाग्यवान वे हैं, जो इस पर निवास करते हैं। संव्याप्त प्राणसत्ता से जिस प्रकार पृथ्वी के दोनों ध्रुव आदान-प्रदान की प्रक्रिया संपन्न करते हैं, उसी प्रकार मानवी चेतनसत्ता के दोनों ध्रुव जो मेरुदंड के दो छोरों पर सहस्रार-मूलाधार चक्र के रूप में अवस्थित है, सतत ग्रहण विसर्जन का उपक्रम चलाते रहते हैं। उपयोगी को ग्रहण कर यदि इस ऊर्जा से अपनी चेतना का स्तर ऊँचा उठाया जा सके तो मानव जीवन को और भी सार्थक, क्रियाशील एवं लोकोपयोगी बनाया जा सकता है।

ऊर्जा के विनिमय की सुनियोजित विधि-व्यवस्था

ध्रुवों की महत्ता कितनी है, इसे चुंबक के उदाहरण से समझकर मानवी काया व सृष्टिगत ब्रह्मांड पर उसे लागू कर भलीभाँति हृदयंगम किया जा सकता है। ध्रुवशक्ति खींचते व उपयोगी को ग्रहण कर अनुपयोगी को दूसरे सिरे से निकाल फेंकते हैं। ब्राह्मी चेतना के क्रिया-कलाप, जो व्यष्टि चेतना को धरा पर अवस्थित जीवधारियों, वृक्ष, वनस्पति को प्रभावित कर प्राण ऊर्जा प्रदान करने वाले मुख्य कारण बनते हैं, इन्हीं ध्रुव सत्ताओं के माध्यम से संचालित होते हैं। भूतल के ध्रुवों की महत्ता को समझने के लिए काया के दो ध्रुवों व उनके माहात्म्य भरे क्रिया-कलापों को समझना होगा। ये दो ध्रुव मस्तिष्क स्थित सहस्रार एवं मूलाधार केंद्रों के रूप में होते हैं। ब्राह्मी चेतना से उपयोगी अंतर्गृही प्रभावों को ग्रहण करने का दायित्व मेरुदंड के उत्तरी सिरे पर स्थित विद्युत स्फुलिंग के फुहारे सहस्रार का है तो प्राण ऊर्जा को सारी काया में वितरण कर अवांछित को निकाल फेंकना मूलाधारचक्र का कार्य है जो गुदा-मूत्र द्वार के मध्य अवस्थित होता है।

इस सूक्ष्म संरचना के अतिरिक्त मोटी बनावट से भी काया के केंद्रों की महत्ता को समझा जा सकता है। मस्तिष्क और हृदय दो केंद्र ऐसे हैं, जो शरीर के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। यों तो महत्त्व हर अंग अवयव का है। शरीर परिचालन तथा विभिन्न क्रिया-कलापों में उनकी अपनी-अपनी भूमिकाएँ हैं, पर जो रोल मस्तिष्क और हृदय का है, अन्य किसी भी कायिक अंग-प्रत्यंग का नहीं है। मस्तिष्क का सामान्य परिचय विभिन्न तंत्रों के ऊपर नियंत्रण रखने तथा हृदय के रक्त परिवहन में केंद्रीय भूमिका निभाने के रूप में मिलता है। ये कार्य स्थूल हैं। इनकी सूक्ष्म भूमिकाएँ और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। सोचने, विचारने, निर्णय लेने आदि की क्षमता मस्तिष्क में ही होती है। हृदय से भाव-संवेदनाएँ निस्सरित होती हैं। बाह्य जगत से आदान-प्रदान का क्रम भी इन्हीं दो केंद्रों के माध्यम से चलता है। ये स्वयं भी

बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित होते तथा दूसरों को भी अपनी स्थिति के अनुरूप प्रभावित करते हैं। अत्यधिक संवेदनशील होने के कारण इनकी स्थिति में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं, जिसकी प्रतिक्रियाएँ व्यक्ति एवं वातावरण पर दिखाई पड़ती हैं। समूचे शरीर में क्या परिवर्तन हो रहे हैं, उसकी सूक्ष्म जानकारी इन दो मर्मस्पर्शी केंद्रों की स्थिति से मिल जाती है। विचारणा के स्तर तथा अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के आधार पर उसका परिचय आसानी से मिल जाता है।

सौरमंडल शरीर की तरह ही एक विराट शरीर है। ब्रह्मांड में ऐसे अंगणित विराट घटक क्रियाशील हैं। उनकी संख्या एवं स्वरूप की सही-सही जानकारी किसी को भी नहीं है। अपने सौरमंडल में नौ ग्रह हैं। उलटी कक्षा में घूमने वाले एक अन्य ग्रह का भी प्रमाण मिला है जिसे दसवाँ ग्रह समझा जा रहा है। मंगल, पृथ्वी, वृहस्पति, बुध, शनि, शुक्र, प्लेटो, नेपच्यून, यूरेनस के अतिरिक्त दसवाँ ग्रह भी उस परिवार में सम्मिलित हो गया है। ये सभी सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करते हैं। हर ग्रह के एकानेक उपग्रह हैं। अपनी पृथ्वी का चंद्रमा है। सौरमंडल के हर घटक परस्पर एकदूसरे से अन्योन्याश्रित रूप से जुड़े हुए हैं तथा अपनी गति एवं स्थिति से एकदूसरे को प्रभावित करते हैं। पृथ्वी का निज का जितना वैभव है, उससे अनेक गुना दूसरे घटकों के अनुदानों से मिला है। गरमी, प्रकाश, वर्षा आदि अनुदान तो प्रत्यक्ष दीखते हैं। पर सूक्ष्म दिखाई नहीं पड़ते। सूक्ष्म आदान-प्रदान के अति संवेदी केंद्रों का परिचय पृथ्वी के ध्रुव केंद्रों के रूप में मिला है। उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव के रूप में दो छोरों पर अवस्थित इन केंद्रों के अतिरिक्त गर्भ में एक हृदय संस्थान भी है। पृथ्वी का घोर तापयुक्त यह हृदय-केंद्र अत्यंत विशाल है। इसकी त्रिज्या २१०० मील है। इस भाग को 'बेरी स्फियर' कहते हैं।

भू-गर्भ विज्ञान के अनुसार पृथ्वी गोल है। केवल ध्रुवीय क्षेत्रों में कुछ पिचकी हुई है। भूमध्य रेखा क्षेत्र में कुछ उभरी हुई है। पृथ्वी का व्यास ७९०० मील है। पर्वतों की सर्वोच्च चोटी प्रायः ५.५ मील ऊँची और समुद्र की अधिकतम गहराई ७ मील है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि हमें ऊर्जा प्रदान करने वाले सौरमंडल का अब अंत समीप आ गया। काल गणना करने वालों का मत है कि सूर्य का किशोर काल व्यतीत हो गया है। प्रौढ़ावस्था अभी चल रही है, यह उसकी ढलती उम्र है जो उसे क्रमशः मरण की दिशा में घसीटे लिए जा रही है। जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं, वह शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सूर्य की पतिव्रता पत्नी है। वह उसी की कमाई खाती है। सुरक्षा के लिए उसी पर आश्रित है और पति मरण पर साथ सती होने के लिए समुद्यत है। अस्तु, सूर्य के मरण का सीधा संबंध अपनी पृथ्वी के साथ होने और उसके आंचल में पलने वाले हम सब मनुष्यों का भाग्य भी इन अभिभावकों की स्थिति पर अवलंबित है।

इन सब आलंकारिक मान्यताओं के बावजूद यह तथ्य अपने स्थान पर अटल है कि भले-बुरे जो भी अंतर्गृही प्रभाव पृथ्वी पर होते हैं, उनका कारण यह सौरमडंल ही है। विराट का यह एक अंग भर है। इससे आने वाले ऊर्जा का पुंज ध्रुवकेंद्रों पर निरंतर बरसता व चेतन सत्ता को प्रभावित करता है।

वस्तुतः पृथ्वी का सारा जीवन ही सूर्य पर आधारित है। सिद्ध होता है कि नन्हे-नन्हे जीवाणु (बैक्टीरिया) तथा विषाणु (वायरस) सभी का जीवन कोश (नाभिक या न्यूक्लियस) सूर्य का ही प्रकाश स्फुलिंग और चेतन परमाणु है, जबकि उसके कोशिका सार (साइटोप्लाज्म) में अन्य पार्थिव तत्त्व। जीवन चेतना सर्वत्र एकसी है, परिभ्रमण केवल मन की वासना के अनुसार चलता रहता है। नाभिक में भी नाभिक (न्यूक्लिओलस) होते हैं, जिससे यह भी सिद्ध होता है कि जिस

प्रकार कोशिका सार (साइटोप्लाज्म) का सूर्य नाभिक होता, नाभिक अग्नितत्त्व होता है। अग्नि या प्राण में ही मन होता है, उसी प्रकार मन की चेतना में ही विश्व चेतना। परमाणु में उसका नाभिक ठीक इसी प्रकार है जिस प्रकार समस्त सौरमंडल का अधिष्ठाता सूर्य। नाभिक न रहे तो परमाणु का जीवकोश का अस्तित्व नहीं रह सकता उसी प्रकार जब तक सूर्य है तभी तक पृथ्वी और समस्त सौरमंडल। सूर्य को भी ज्वलनशील चेतन किसी ऐसी नीहारिका से मिलता है, जिसके परिवार में अपने सूर्य जैसे एक नहीं अनेक सूर्य और उनके सौरमंडल सम्मिलित हैं। यदि वह नीहारिका नष्ट हो जाए तो यह सारे सौरमंडल पलक मारते नष्ट हो जाएँ। शरीर की कोशिकाओं में दिखाई पड़ने वाले ध्रुवीकरण की तरह ही विलक्षण प्रक्रिया इस ब्रह्मांडीय सत्ता के ध्रुवकेंद्रों की भी है।

पृथ्वी के अन्य भागों की अपेक्षा ध्रुवों की परिस्थितियाँ असामान्य हैं। समझा जा रहा है कि अंतर्गृही विशिष्ट अनुदान इन्हीं केंद्रों के माध्यम से अवतरित होकर समस्त भूमंडल पर वितरित होते हैं तथा विजातीय द्रव्य दक्षिणी ध्रुव के माध्यम से अंतरिक्ष में फेंक दिए जाते हैं, यह मान्यता पूर्णतः विज्ञानसम्मत भी है।

इन ध्रुव प्रदेशों पर दुर्लभ मनोरम दृश्य दिखाई पड़ते हैं। उत्तरी ध्रुव पर छाया रहने वाला सुविस्तृत तेजोवलय 'आरोरा बोरिएलिस' अपनी अद्भुत आभा से हर किसी का मन मोह लेता है। 'दि नेशनल एरौनाटिक्स एंड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन' (नासा) द्वारा छोड़े गए डायनामिक्स एक्सप्लोरट—'ए' सेटेलाइट से अनेकों हाई रिजोल्यूशन फोटोग्राफ्स लिए गए। उससे आश्चर्यजनक जानकारियाँ मिली। अध्ययन-अन्वेषण में लगे वैज्ञानिकों का मत है कि अंतरिक्ष से आने वाले सब एटोमिक पार्टिकल्स पृथ्वी के विद्युत चुंबकीय क्षेत्र में प्रवेश करके आवेशित हो जाते हैं तथा ध्रुव केंद्रों पर ध्रुवप्रभा के रूप में

दृष्टिगोचर होते हैं। ध्रुवप्रभा का क्षेत्र विस्तार ४००० कि.मी. व्यास है। इसकी किरणों की पट्टियाँ जो ध्रुवकेंद्र को आवृत किए होती हैं, उनकी चौड़ाई १००० कि.मी. हुआ करती है। यह प्रभामंडल जमीन से १०० कि. मी. ऊपर चमकता है तथा उसकी स्वयं की ऊँचाई दस से लेकर सैकड़ों किलोमीटर तक होती है। दिन में चर्मचक्षुओं से आरोरा को देखने में कठिनाई होती है, पर रात को वह स्पष्ट दिखाई पड़ता है। दिन-रात के आरोरा में विशेष अंतर भी पाया जाता है। सूर्य किरणों के आड़े-तिरछे पड़ने से उसका रूप, रंग बदलता रहता है। उसे शक्तिशाली कैमरों से देखा और उसका फोटो लिया जा सकता है।

यूनाइटेड स्टेट्स के उत्तरी क्षेत्र के आकाश मार्ग से ध्रुवीय ज्योति को सैन फ्रांसिस्को, मेमफिस तथा एटलांटा के दक्षिण छोर पर रंग-बिरंगे रूप में देखा जा सकता है। ५३ डिगरी अक्षांश पर तथा मध्य रात्रियों में उसके दर्शन किए जा सकते हैं। वैज्ञानिकों का अभिमत है कि ध्रुवीय ज्योति का प्रकाश हाइड्रोजन आयन अथवा प्रोटॉन के प्रवाह से उत्पन्न होता है जो सूर्य से १५०० मील प्रति सेकंड की गति से फेंका जाता है। प्रकाश कण प्रोटॉन्स इलेक्ट्रॉन्स को भी साथ खींचकर लिए चलते हैं जिनका कुछ अंश पृथ्वी तक पहुँचता है जहाँ का चुंबकीय क्षेत्र इलेक्ट्रॉनों तथा प्रोटॉनों को अलग कर देता है। प्रोटॉनों का जब कुछ अंश पृथ्वी के वायुमंडल से स्पर्श करता है तो ध्रुवीय ज्योति (आरोरा) के रूप में प्रकट होता है। इसका यथार्थ स्वरूप तथा भूमिका अविज्ञात होते हुए भी संभावना व्यक्त की गई है कि धरती पर अंतर्गृहीय अनुदानों की वर्षा का वह स्थूल प्रकटीकरण है।

अलेक्जेंडर मार्शेक ने सघन अंतरिक्ष में प्रकाश के रूप में भी आकाशगंगा से आने वाले शक्ति-प्रवाहों को सुना है। उनका यंत्र अंकन किया है। यह आवाज क्रमबद्ध संगीत एवं स्वरलहरियों की तरह है। यों कान से वे ध्वनि मात्र सुनाई पड़ती हैं, उनका कोई विशेष महत्त्व

समझ में नहीं आता, पर खगोलविद्या की नवीनतम शोधें यह स्पष्ट करती चली जा रही हैं कि यह शब्द-प्रवाह सूर्य से ध्रुव प्रदेशों पर बरसने वाले गति-प्रवाहों की तरह ही अतीव सामर्थ्यवान है और उनके द्वारा प्राणियों के शरीर तथा मन पर ऐसा प्रबल प्रभाव पड़ता है जैसा व्यक्तिगत प्रयत्नों से बहुत परिश्रम करने पर भी संभव नहीं। यह प्रभाव भले और बुरे दोनों ही स्तर का हो सकता है।

इस सबके बावजूद यह तथ्य भुलाया नहीं जा सकता कि पृथ्वी को सूर्य से ही सर्वाधिक अनुदान मिलते हैं और वह उसकी स्थिति, गति एवं परिवर्तनों से प्रभावित भी होती है। उन प्रभावों का इन ध्रुवों पर अध्ययन कर सकना अधिक सुगम है। ध्रुवीय ज्योति का सूर्य-कलंकों से भी घना संबंध है। जब सूर्य की प्रकृति शांत रहती है, पर उग्र होने पर उस ज्योति का दर्शन दिन और रात को अधिक समय तक किया जा सकता है। सौर गतिविधियों का चक्र चरम बिंदु के नीचे उतरना प्रारंभ होने पर नासा अनुसंधान केंद्र द्वारा उसके प्रभावों का अध्ययन करने के लिए एक सैटेलाइट छोड़ा गया। उससे प्राप्त निष्कर्षों के अनुसार प्रति ग्यारह वर्ष की अवधि में सूर्य हलचलों की एक अवस्था ऐसी आती है, जब उसका उच्चतम उफान क्रम नीचे उतरना आरंभ होता है। ध्रुवीय प्रदेशों में चलने वाले ऑटोरल स्टार्म्स सर्वोच्च स्थिति में जा पहुँचते हैं, जब सौरचक्र की स्थिति अपने निम्नतम बिंदु को स्पर्श कर रही होती है। विशेषज्ञ हाफमैन के अनुसार किन्हीं अज्ञात कारणों से ध्रुवप्रभा के अंतर्गत सौरस्पंदन के उतार के समय में अति उच्च गति के तूफान उठा करते हैं।

सूर्यग्रहण के समय दिखाई पड़ने वाले कोरोना का अध्ययन करने से यह ज्ञात हुआ है कि ग्यारह वर्षीय चक्र में सबसे कम धब्बों एवं लपटों वाले समय में कोरोना का उभार भी सबसे कम होता है और जिस समय अधिकतम धब्बे व लपटें देखी जाती हैं उस समय कोरोना

में भी सबसे अधिक उभार देखा जाता है। इन सब घटनाओं का संबंध सौर चुंबकीय क्षेत्र की हलचलों से है, जिसका सीधा प्रभाव पृथ्वी की परिस्थितियों पर पड़ता है। विशेषकर उस प्रभाव को ध्रुव-केंद्रों पर अधिक स्पष्ट देखा जा सकता है।

न केवल अंतर्गृहीय प्रभावों को इन ध्रुवकेंद्रों पर देखा जा सकता है बल्कि पृथ्वी एवं उसके वातावरण में हुए हेर-फेर का भी प्रभाव वहाँ देखना संभव है। विगत दिनों यह आश्चर्यजनक तथ्य विदित हुआ कि पृथ्वी पर होने वाले नाभिकीय परीक्षणों से होकर विकिरण दक्षिणी ध्रुव तक न जाने कैसे और क्यों पहुँच जाते हैं। खतरनाक विकिरणों की बड़ी मात्रा दक्षिणी ध्रुव के किनारे एकत्रित होती जा रही है।

इन ध्रुवों के संबंध में जैसे-जैसे जानकारियाँ मिलती चली जा रही हैं, इनकी विलक्षणता वैज्ञानिक समुदाय को हतप्रभ तो करती ही है, नवीन अन्वेषणों के लिए उत्साहित भी करती है।

उत्तरी ध्रुव एक गड्ढा है तो दक्षिणी ध्रुव एक गूमड़ा। उत्तरी ध्रुव की बरफ दक्षिणी ध्रुव से अधिक गरम होती है। जल्दी गलने और जल्दी जमने वाली भी होती है। दक्षिणी ध्रुव उजाड़ क्षेत्र है, यहाँ कुछ पक्षी, जलचरों के अतिरिक्त एक पंखहीन मच्छर भी पाया जाता है। वह क्या खाकर जीता है और कैसे इतने भयंकर शीत में जीवन धारण किए रहता है? वैज्ञानिक इस प्रश्न का आज तक समाधान नहीं कर सके।

उत्तरी ध्रुव में जीवन का बाहुल्य है, पौधों तथा जंतुओं की संख्या करोड़ों तक पहुँचती है। यहाँ दिन और रात समान नहीं होते। ६-६ माह के भी नहीं होते—कई बार रात ८० दिन के बराबर होती है, यह सबसे लंबी रात होती है। क्षितिज के बीच सूर्य वर्ष में १६ दिन रहता है। यहाँ चंद्रमा इतनी तेजी से चमकता है कि उसके प्रकाश में, दिन में सूर्य की रोशनी के समान ही काम किया जा सकता है।

कुछ मेरुप्रकाश विस्तृत और आकृतिहीन होते हैं, कुछ सजीव और हलचल करते हुए। कभी वे किरणों की लंबाई के रूप में ज्ञात पड़ते हैं, कभी प्रभा और ज्वाला के रूप में, कभी वह दृश्य बदलता हुआ कभी चाप, पड़ी और कोरेना के रूप में होता है तो कभी प्रकाश-गुच्छे सर्चलाइट के समान। यहाँ रातभर तरह-तरह के दृश्य बदलते हैं। हर दृश्य और परिवर्तन सूर्य की अपनी आंतरिक हलचल का प्रतीक है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण अंतर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष अनुसंधान के दौरान आया और उसके विलक्षण आकार-प्रकार देखने में आए। स्मरण रहे कि भू-भौतिक वर्ष सूर्य के ११ वर्षीय चक्र के दौरान मनाया जाता रहा है। इस अवधि में सूर्य की आंतरिक हलचल बहुत बढ़ जाती है, यह प्रकाश मुख्यतः चुंबकीय तूफान होता है जो पृथ्वी की सारी यांत्रिक क्रिया में क्रांति उत्पन्न करके रख देता है।

अनुसंधान के दौरान यह पाया गया है कि सूर्य में जब तेज-दमक दीखती है उसके एक-दो दिन बाद ही मेरु प्रकाश भी तीव्र हो उठता है। यह बढ़ी हुई सक्रियता सूर्य-विकिरण तथा कणों की बौछार का ही प्रतीक होती है। शांत अवस्था में भी यह संबंध बना रहता है, पर प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होता। यह कण अति सूक्ष्म इलेक्ट्रॉन (ऋण आवेश कण) प्रोटॉन (धन आवेश कण) होते हैं जो २०० से लेकर १००० मील तक प्रति घंटे की गति से दौड़ते हुए पृथ्वी तक आते हैं जबकि प्रकाश पृथ्वी तक पहुँचने में कुल ८ मिनट ही लेता है। प्रकाश की गति १८०००० मील प्रति सेकंड है। इसका अर्थ यह हुआ कि पृथ्वी सूर्य की विद्युतीय शक्ति से संबद्ध है। पृथ्वी स्वयं एक चुंबक की तरह है। चुंबकत्व पार्थिव कणों में विद्युत-प्रवाह के कारण पैदा होता है। इससे स्पष्ट है कि पृथ्वी में चुंबकीय क्षमता सूर्य के ही कारण है। यह कण पृथ्वी से हजारों मील ऊपर ही पृथ्वी के क्षेत्र द्वारा पृथ्वी के उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवों की ओर मोड़ और प्रवाहित कर दिए जाते हैं।

मार्च तथा सितंबर में (चैत्र तथा क्वार) में जबकि पृथ्वी का अक्ष सूर्य के साथ उचित कोण पर होता है मेरु प्रकाश अधिक मात्रा में पृथ्वी पर पड़ता है जबकि अन्य समय गलत दिशा के कारण प्रकाश लौटकर ब्रह्मांड में चला जाता है। यही वह अवधि होती है जब पृथ्वी में फूल-फलों की वृद्धि और ऋतु परिवर्तन होता है। पूरी पृथ्वी पर पलने वाले जीवधारी एवं वृक्ष-वनस्पति अपना ऊर्जा अनुदान सूर्य के साथ पृथ्वी की बदलती स्थिति के अनुरूप पाते रहते हैं। उनके जीवन का प्राणाधार यही सूर्य है जो स्वयं किसी महासूर्य से संचालित होता है। इस महासूर्य को परब्रह्म का प्रतीक रूप महापिंड भी कह सकते हैं।

इस महापिंड या परमात्मा ने अपनी शक्तिस्वरूपा सहचरी आकाशगंगाओं को विपुल शक्ति देकर समग्र व्यवस्था के लिए भेज दिया है। मंदाकिनियाँ उस अनुदान को हर मंडप के एक-एक मुखिया सूर्य को आवश्यक संपदाएँ सौंपती चली जाती हैं। यह सृष्टि की एक सुव्यवस्थित क्रिया है, जिसमें कभी व्यवधान नहीं आता।

किसी सौर टेलिस्कोप से ध्रुवों के हिमाच्छादित प्लेटो का अध्ययन किया जाए तो आश्चर्यजनक तथ्य एवं दृश्य सामने आते हैं। वहाँ के स्थान तो प्राकृतिक लगते हैं, पर दिखाई पड़ने वाले दृश्य अत्यंत ही अस्वाभाविक, मध्य गरमी के मौसम में वहाँ सूर्यास्त होता ही नहीं। कभी-कभी सोलह दिनों तक सूर्य बिना अस्त हुए चमकता रहता है। रातें भी २० से लेकर ३० रातों जितनी लंबी होती हैं। कितनी बार हिमखंडों पर कितने ही नकली सूर्य चमकते दिखाई पड़ने लगते हैं जो अवास्तविक होते हुए भी वास्तविक जान पड़ते हैं।

उत्तरी ध्रुव की तरह दक्षिणी ध्रुव में भी ध्रुवप्रभा के दर्शन होते हैं। उत्तरी ध्रुव से उसकी भिन्नता होने के कारण वैज्ञानिकों ने उसका नाम 'आरोरा आस्ट्रेलिस' दिया है। दिन यहाँ भी बहुत ही लंबे होते हैं। जिन अन्वेषी दलों ने वहाँ की परिस्थितियों का अध्ययन किया है,

उनका कहना है कि कई दिनों तक रात्रि के दर्शन नहीं हो सके। आकाश में रंग-बिरंगे गैसों के बादल मँडराते रहते हैं। तापक्रम शून्य से भी कई डिगरी नीचे बारहों माह तक बना रहता है। सदा बरफ की मोटी परत जमी रहती है। सफेद भालू, पेंगुइन पक्षी तथा मछलियाँ उस भयंकर शीत में भी जीवित रहते हैं। अनुसंधानकर्त्ताओं का मत है कि उत्तरी-दक्षिणी ध्रुव पर दीखने वाला प्रभामंडल का अंतर्गृहीय परिस्थितियों के आदान-प्रदान से गहरा संबंध है, जिसकी यथार्थ जानकारी तो उपलब्ध नहीं हो सकी है, पर अगले दिनों मिलने की संभावना है।

ध्रुवों संबंधी यह विवेचन व्यष्टि एवं समष्टि के मध्य तारतम्य को स्पष्ट करता है एवं ब्रह्मांड संबंधी ऐसे अनेक रहस्यों का उद्‌घाटन करता है जो प्रगति की चरम सीमा पर पहुँचे हुए विज्ञान को विलक्षण अद्‌भुत लगती हैं।

वस्तुतः आत्मिकी का दृष्टिकोण यह है कि सारा विश्व-ब्रह्मांड समग्र विश्व की चेतना का अधिष्ठाता विश्वात्मा है। बिखरी हुई आत्माएँ इसी के छोटे-छोटे घटक हैं। जब तक यह इकाइयाँ परस्पर मिलकर रहती हैं और एकदूसरे के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हैं तभी तक दृश्यमान सौंदर्य का अस्तित्व है। यदि इनका विघटन होने लगे तो केवल धूलि मात्र ही इस संसार में शेष रह जाएगी। विश्व-मानव को विश्वात्मा यदि अपनी समग्र चेतना से विघटित होकर संकीर्ण स्वार्थपरता में बिखरने लगे तो समझना चाहिए विश्व-सौंदर्य की समाप्ति का समय निकट आ गया।

डॉ. फ्रिटजॉफ काप्रा जिन्होंने 'ताओ आफ फिजिक्स' व 'टर्निंग पॉइंट' जैसी प्रसिद्ध पुस्तकें लिखी हैं, स्वीकार करते हैं कि परमाणु का प्रत्येक घटक विश्व-ब्रह्मांड का परिपूर्ण घटक है अर्थात अणु में ब्रह्मांड सत्ता ओत-प्रोत है। अणु में ही विराट ब्रह्मांड के दर्शन किए जा सकते हैं। यह पारस्परिक संबंध इतने प्रगाढ़ हैं कि इन्हें कभी निरस्त नहीं

किया जा सकता। जहाँ इस तरह का प्रयास होता है, वहाँ भयंकर दुष्परिणाम उपस्थित हो उठते हैं।

परा मनोविज्ञान की नवीनतम शोधें भी इसी निष्कर्ष पर पहुँची हैं कि मनुष्य चेतना ब्रह्मांड चेतना की अविच्छिन्न इकाई है। अस्तु, प्राणसत्ता शरीर में सीमित रहते हुए भी असीम के साथ अपना संबंध बनाए हुए है। व्यष्टि और समष्टि की मूल सत्ता में इतनी सघन एकता है कि एक व्यक्ति समूची ब्रह्मचेतना का प्रतिनिधित्व कर सकता है। इस संबंध में विज्ञान की दृष्टि उदार बनती जा रही है। अब विज्ञान अपनी भाषा में परब्रह्म को परमात्मा को 'ब्रह्मांडीय चेतना' के रूप में स्वीकार करने लगा है और उसका घनिष्ठ संबंध जीवचेतना के साथ जोड़ने में उसे अब विशेष संकोच नहीं रह गया है। यह मान्यता जीव और अंशी के रूप में मानने की वेदांत व्याख्या से बहुत भिन्न नहीं है।

ध्रुवों का व्यष्टि एवं समष्टिपरक प्रतिपादन अध्यात्म दर्शन की इसी मान्यता को सत्यापित करता है एवं संकेत देता है कि जिस प्रकार ये दोनों परस्पर गुँथे हैं, मानवी चेतनसत्ता भी परमात्मसत्ता से अलग नहीं एक है। कैसे आदान-प्रदान की विधि-व्यवस्था बनाई जाए? यह आत्मिकी के अनुशासक-विधानों का पालन करने के रूप में आत्मसात किया जा सकता है।

यहाँ ध्रुव कुछ नहीं, सभी परिवर्तनशील है

गाड़ी के पहिये घूमते रहते हैं और धुरी यथास्थान स्थिर रहती है। इसी प्रकार समझा जाता रहा है कि पृथ्वी का एक ध्रुव स्थान है जिस पर वह लट्टू की कील की तरह घूमती रहती है। यह स्थिरता का सिद्धांत अब निरस्त हो गया है और माना जाता है कि इस ब्रह्मांड में हर वस्तु गतिशील है। स्थिरता किसी के भी भाग्य में बदी नहीं है।

पृथ्वी नारंगी जैसी शकल की मानी गई है। उसके दोनों सिरों पर गड्ढे हैं। भीतर धँसा हुआ उत्तर ध्रुव और बाहर उभरा हुआ दक्षिण ध्रुव। सामान्य गोलाई पृथ्वी पर अन्यत्र तो है पर इन दोनों क्षेत्रों में

व्यतिक्रम हुआ है। इसलिए सूर्य से संबंधित अनुदानों का लाभ वहाँ अन्यत्र की तरह नहीं मिलता है। गड्ढे अपने किस्म का व्यतिरेक उत्पन्न करते हैं। पृथ्वी की भ्रमण कक्षा भी वृत्ताकार न होकर अंडाकार है। साथ ही वह लट्टू की तरह लटकती हुई भी घूमती है। ऐसे ही कुछ अन्य कारण भी हैं जिनके कारण ध्रुवों की स्थिति में व्यतिरेक उत्पन्न होता है। वहाँ छह महीने की रात और छह महीने का दिन होता है, पर वह दिन भी वैसा नहीं जैसा कि हम अपने यहाँ देखते हैं। इसी प्रकार वहाँ रात भी वैसी नहीं होती जैसी अन्यत्र होती है। यह व्यतिरेक ध्रुवों की अपनी भिन्नता विचित्रता के कारण है। व्यक्ति हो या ग्रह-नक्षत्र अथवा धरातल का कोई भाग खंड, सामान्य से असामान्य की स्थिति में रहेगा तो उसे असाधारण परिस्थितियों में भी रहना होगा। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों की परिस्थितियाँ धरातल के अन्य स्थानों में इसी कारण भिन्न हैं। वहाँ और भी कितने ही आश्चर्यजनक दृश्य एवं तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं।

उत्तरी ध्रुव में प्रायः सीटी जैसी पैनी ध्वनियाँ सुनाई पड़ती रहती हैं। यह अंतरिक्ष से धरती पर उतरने वाले अनुदानों की जानकारी देती है। इनके उतार-चढ़ावों को देखते हुए यह समझा जा सकता है कि किस स्तर के प्रवाह ऊपर से नीचे आ रहे हैं। इस क्षेत्र में ७००० मील की ऊँचाई पर विद्युतीय गैसों का बादल मंडराता हुआ देखा गया है। समझा जाता है कि वह छलनी का काम देता है और उन्हीं ऊर्जाओं को धरती पर उतरने देता है जो उसके काम की हैं।

उत्तरी ध्रुव की धरती भीतर की ओर धँसी है। इसकी गहराई १४,००० फुट है। दक्षिणी ध्रुव ऊँट की पीठ पर देखे जाने वाले कूबड़ की तरह ऊपर उठा हुआ है। यह उभार १९,००० फुट है। यहाँ बरफ स्थिर है जबकि उत्तरी ध्रुव पर बहती रहती है। वहाँ एस्किमो जाति के मनुष्य तथा कुत्ते, हिरन, रीछ जैसे प्राणी पाए जाते हैं। पर

दक्षिण ध्रुव पर पेंगुइन और बिना पंख वाले मच्छर के अतिरिक्त और कोई प्राणी नहीं है। इस क्षेत्र में रात धीरे-धीरे आती है और सूर्य बहुत कम समय तक निकलता है फिर भी उसके अस्त होते समय की लालिमा देर तक छाई रहती है। रात्रि बहुत लंबी होती है। उसमें उत्तर दिशा में ही थोड़ीसी प्रकाश आभा दीख पड़ती है। सूर्य किरणों के विचित्र मोड़-मरोड़ों के कारण इस क्षेत्र के आकाश में चित्र-विचित्र दृश्य दीखते रहते हैं। कभी-कभी सूर्य हरे रंग का दीख पड़ता है।

उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों की अपनी-अपनी विचित्रताएँ है, जो अजनबी को हतप्रभ कर देने के लिए पर्याप्त हैं। कई वस्तुएँ जमीन पर होते हुए भी अपने आकार से कई गुनी बड़ी दिखाई पड़ती हैं और हवा में अधर में लटकी हुई प्रतीत होती हैं। कई बार बरफ में, कई बार हवा में ऐसे नकली सूर्य-चंद्र चमकने लगते हैं जो अवास्तविक होते हुए भी वास्तविक जैसे प्रतीत होते हैं। उत्तरी ध्रुव में रातें सामान्य क्षेत्रों के बीस दिनों के बराबर लंबी होती है। क्षितिज में सूर्य का दर्शन भी १६ दिन तक बना रहता है। चंद्रमा की रोशनी में सूर्य के प्रकाश की तरह काम हो सकता है।

यह दृश्यमान ध्रुव हुए। इसके अतिरिक्त दो अदृश्य ध्रुव भी हैं, जिन्हें विद्युत चुंबकीय ध्रुव कहते हैं। वे स्थान बदलते रहते हैं, जबकि दृश्यमान ध्रुवों का स्थान परिवर्तन बहुत धीमी गति से होता है। जब होता है, तब धरातल को प्रभावित करता है। समुद्रीय भाग का कुछ अंश थल के रूप में उभरता और थलीय भाग पानी में डूबता देखा गया है। महाद्वीपों की स्थिति में इसी कारण परिवर्तन होते रहे हैं। कुछ भाग बँटकर विलग हुए हैं और कुछ विलग खंडों को समीपता का लाभ मिला है। वे जुड़कर एक हो गए हैं। किंतु विद्युतचुंबकीय ध्रुवों के परिवर्तन से ऐसी भौगोलिक हेरा-फेरी नहीं होती। उनके कारण पृथ्वी के वातावरण पर प्रभाव पड़ता है और प्राणियों का आंतरिक स्तर इस कारण बदलते हुए देखा गया है।

नक्शे में दिखाए गए उत्तरी-दक्षिणी ध्रुव भौगोलिक हैं। नारंगी के शकल वाली धरती के दो सिरे गड्ढे एवं टीले जैसे हैं, यही सर्वविदित ध्रुव हैं। चुंबकीय ध्रुव इससे भिन्न होते हैं। इन दिनों चुंबकीय और भौगोलिक ध्रुव अति समीप होने के कारण उनकी संयुक्त स्थिति का परिचय हमें प्राप्त हो रहा है। पर सदा से ऐसा न था और सर्वदा ऐसा रहेगा भी नहीं। चुंबकीय ध्रुव अपना स्थान बदलते रहते हैं। यहाँ तक कि वे घूमते-घूमते एकदूसरे के स्थान तक पहुँच जाते हैं। पृथ्वी के आरंभिक दिनों वाला उत्तरी ध्रुव दक्षिण छोर पर आया है और दक्षिण वाले ने उत्तर वाले के स्थान पर अधिकार कर लिया है। अनुमान है कि अब से दो हजार वर्ष बाद सन् ४००० में फिर यह ध्रुव परिवर्तन की एक परिधि पूरी कर लेगा। इस अवधि में एक या दो शताब्दियों का समय ऐसा भी गुजरेगा जिसमें पृथ्वी का सामान्य गुरुत्वाकर्षण शक्ति में बेतरह घट-बढ़ होने के कारण भयानक उथल-पुथल होगी।

चुंबकीय परिवर्तनों के अप्रत्याशित परिवर्तन होते हैं। उस कारण न केवल शीत-ग्रीष्म की स्थिति में भयानक परिवर्तन हो सकते हैं वरन प्राणियों की नसलें भी बदल सकती हैं। भूतकाल में कितने ही हिमयुग आए हैं और सरदी की अधिकता तथा बरफ की भरमार से प्राणियों की जान बचना कठिन हो गया है। जिनकी सूझ-बूझ काम दे गई या जिन्हें आत्मरक्षा के साधन मिल गए, मात्र वे ही जीवित रह सके। इसी प्रकार ग्रीष्म युग में ध्रुवों की बरफ पिघलने से समुद्र की सतह ऊपर उठी है और कितने ही महाद्वीपों को उदरस्थ करने के साथ-साथ ही नए द्वीप नीचे से ऊपर उछलने का उपक्रम बना है। इस प्रकार धरातल और समुद्र के स्थानों में आश्चर्यजनक परिवर्तन होते रहे हैं। यह सब पृथ्वी की चुंबकीय क्षमता में व्यतिरेक उत्पन्न होने के कारण होता रहा है। इसका मूलभूत कारण ध्रुवों का स्थान बदलते रहना ही है।

कहा जाता है कि कभी भूमंडल के सभी महाद्वीप तक दूसरे से जुड़े थे। ग्रहों की हलचलों और आकुंचन प्रसार की प्रक्रियाओं से वे एकदूसरे से दूर हटते गए। हिमालय अभी भी लगातार उत्तर की ओर खिसक रहा है और भूवैज्ञानिकों का कथन है कि ५ करोड़ वर्ष बाद संपूर्ण उत्तरी भारत का अधिकांश इलाका हिमालय के पेट में समा जाएगा। इसी तरह सन् १९६६ में मास्को में संपन्न द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक सम्मेलन में प्रो. डॉ. ब्रूस सी. जेन और डॉ. नील यू. डाइक ने घोषणा की थी कि आज से लगभग २ हजार ३२ वर्ष बाद पृथ्वी के चुंबकीय बल क्षेत्र अपना स्थान बदल देंगे। साथ ही पृथ्वी की चुंबकीय शक्ति घटेगी।

पिछली शताब्दियों के खगोलवेत्ता जेम्स बैंडले और मौलीनो ने यह आशंका व्यक्त की थी कि ध्रुव अपना स्थान बदलते हैं। उसका कारण पृथ्वी की एक गति 'थिरकन' भी हो सकती है।

ऐसा क्यों होता है, इसके कारणों की खोज करते हुए कई तथ्य सामने आए हैं। अक्ष की विस्थापना, ध्रुव प्रदेशों में बरफ का पिघलना, समुद्रों की विशाल जलराशि का भटकाव, भूगर्भ के तप्त लावे का उद्वेलन और पुनर्वितरण जैसे कारण इस थिरकन के सोचे गए हैं। वास्तविकता तो यह है कि पृथ्वी अपनी धुरी पर सर्वथा स्थिर नहीं है। उसके अक्ष और सिरे अपना स्थान बदलते रहते हैं। १४ महीने की अवधि में यह विचलन प्रायः ७२ फुट तक होता पाया गया है। यों सवा चार करोड़ फुट व्यास वाली पृथ्वी के कलेवर को देखते हुए ७२ फुट नगण्य है तो भी उससे उसकी गति और स्थिति का पता तो चलता ही है। इंग्लैंड के खगोलवेत्ता जेम्स ब्रेडले ने कभी इस थिरकन की संभावना व्यक्त की थी। अब विधिवत यह यंत्रों द्वारा नापी जाने लगी है। ध्रुव जिन्हें स्थिर मानकर ही उनका नामकरण किया गया था अब पता चला है कि उनका भी तन-मन डोलता है और वे भी इधर-उधर भटकते हैं, एक जगह छोड़ते और दूसरी पकड़ते रहते हैं।

ध्रुवों का असाधारण परिवर्तन अब से ९० करोड़ वर्ष पूर्व हुआ था। उस समय की समुद्री तलछट निकालकर नील उपडाइक जैसे मूर्द्धन्य शोधकर्त्ताओं ने जाना है कि इस चुंबकीय व्यतिरेक के कारण समुद्र क्षेत्र में 'रेडियो लारिया' नामक एक जीव कोश अचानक ही उपज पड़ा, साथ ही पूर्ववर्ती कितने ही जीवन घटकों का लोप हो गया। कितनों में ही आनुवंशिक परिवर्तन हुए और पुरानी शकल-सूरतों में भरी उलट-पुलट हो गई। ऐसा इसलिए हुआ कि धरती की चुंबकीयता देखकर आकाश से कॉस्मिक किरणें उतर पड़ीं और उनके प्रभाव से प्राणियों की नसलें तथा पदार्थों की विशेषताओं में असाधारण व्यतिरेक उत्पन्न हुआ। कितने ही छोटी जाति के प्राणी बहुत बड़ें आकार के हो गए और कितने ही विशालकाय होने पर उस बोझ से आत्मरक्षा न कर सके तथा सदा के लिए समाप्त हो गए। कितनों की जातियों का तो पूरी तरह रूपांतरण ही हो गया।

ध्रुवों की स्थिति का पर्यवेक्षण करने पर कई तथ्य सामने आते हैं। उनमें से एक यह है कि यहाँ कोई वस्तु स्थिर नहीं। दूसरा यह कि मानवी पुरुषार्थ का अत्यधिक महत्त्व होते हुए भी वह सर्वशक्तिमान नहीं है। उसे भी न केवल धरातल से वरन ब्रह्मांडीय परिस्थितियों से भी प्रभावित होना पड़ता है। इन तथ्यों का निष्कर्ष यह निकलता है कि हम न केवल परिवर्तनों का सामना करने की तैयारी रखें वरन यह भी सोचें कि जानकारियाँ जो हस्तगत हैं, वे पूर्ण नहीं हैं। उनमें क्रमिक विकास की दिशा में बढ़ते हुए पिछली मान्यताओं की अपेक्षा अधिक प्रमाणित जानकारियाँ प्राप्त होती रही हैं। अभी इसमें और भी सुधार की गुंजाइश रहेगी। आत्यंतिक सत्य तक पहुँचने के लिए अभी बहुत समय धैर्य रखना पड़ेगा। साथ ही यह भी समझना होगा कि उपलब्ध जानकारियाँ न तो परिपूर्ण हैं और न स्थिर। इसलिए अपने मस्तिष्क के कपाट खुले रखें और अधिक जानने की जिज्ञासा रखते हुए, वर्तमान

मान्यताओं को पत्थर की लकीर न मानें। न ही पूर्वाग्रहों से प्रभावित होकर भविष्य सुधार की संभावनाओं से आँख बंद कर लें।

ध्रुवों के परिवर्तन क्रम को देखते हुए दूसरा निष्कर्ष यह निकलता है कि इस हेर-फेर के लिए बाधित करने वाली अंतर्गृही परिस्थितियों का महत्त्व कम नहीं है। हमारी स्वतंत्रता सीमित है। पुरुषार्थ पर भी सीमा बंधन है। भूलोक इस ब्रह्मांड परिवार का एक छोटा सा घटक और मनुष्य व्यापक प्राणिजगत का एक नगण्य सा सदस्य है। हमें अपनी मर्यादाएँ समझनी चाहिए और पारिवारिकता के अनुबंधों को ध्यान में रखकर अपनी रीति-नीति निर्धारित करनी चाहिए।

ध्रुव अंतर्गृही परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं तथा प्रभावित करते हैं। पृथ्वी के पास सब कुछ अपना नहीं है। उपलब्ध वैभव में से अधिकांश भाग तो उसे सूर्य से अनुदान रूप में प्राप्त हुआ है। किंतु बात इतने से ही समाप्त नहीं हो जाती। समूचा ब्रह्मांड पृथ्वी को कुछ न कुछ प्रदान करता है। वह साधारण भी होता है और असाधारण भी। यह पृथ्वी की ध्रुवों की सूझ-बूझ और क्षमता पर निर्भर है कि वे उसमें से कितना आवश्यक उपयोगी समझते हैं और कितना ग्रहण क़र सकने की पात्रता से संपन्न हैं?

उत्तरी ध्रुव अंतर्गृही क्षेत्र के सिर का काम करता है। अन्न-जल-वायु जैसे आहार वही ग्रहण करता और पेट में धकेलता है। आँख, कान, नाक आदि बाह्यज्ञान को मस्तिष्क गह्वर तक पहुँचाने का काम भी सिर का ही है। दोनों ही ध्रुव बेतुके बेडौल होते हुए भी ग्रहण-विसर्जन का काम करते हैं। दक्षिण ध्रुव को गुदा मार्ग कहना चाहिए। पचने के उपरांत जो अनावश्यक मलवा-कचरा शेष रह जाता है, वह इसी मार्ग से आंतरिक्षिक खाई-खंदक में धकेल दिया जाता है। इस प्रकार हम अंतर्गृही परिस्थिति से सतत प्रभावित होते भी हैं और करते भी हैं।

ध्रुव क्षेत्र की स्थिति इस ब्रह्मांड की भौतिक स्थिति के संबंध में महत्त्वपूर्ण जानकारी देने और आदान-प्रदान में समर्थ रहने की है। वह स्थिरता के पूर्वाग्रह अपनाने वालों को निरुत्साहित करती और कहती है—इस परिवर्तनशील विश्व में हम हठवादी न बनें, जिज्ञासु की तरह अधिक और सही जानने की उत्सुकता बनाए रहें। साथ ही हमें यह भ सोचना होगा कि पृथ्वीसमेत उसके समस्त जड़-चेतन निवासी किसी विशाल विश्वव्यवस्था के अनुशासन में बँधे हुए उपलब्ध स्वतंत्रता का इतना ही उपयोग करें जिससे विश्व अनुशासन में विग्रह और व्यतिरेक उत्पन्न न हो। ग्रहण का औचित्य है, वह उपलब्ध भी है। किंतु विसर्जन की बात को भूलें नहीं। ध्रुव ग्रहण और विसर्जन में निरत रहकर ही अपने ग्रह गोलक का संतुलन बनाए हुए है। हमारी व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियाँ भी इसी विश्व-व्यवस्था के अनुरूप बननी और गतिशील रहनी चाहिए।

❒

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)